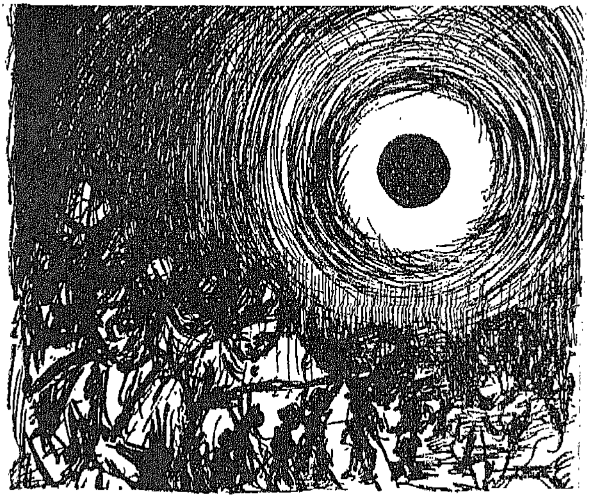
शमशेर सिंह नरूला की कहानियों का हिन्दी-कथा-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन से नरूला का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इस संग्रह की कहानियाँ उस काल की ओजस्वी कृतियाँ हैं जब यह आन्दोलन बहुत सक्रिय और सृजनशील था। इनमें से अधिकतर कहानियाँ 'हंस' बनारस में प्रकाशित होकर ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं।



आधी रात का सूरज

लेखक की अन्य हिन्दी रचना

— हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का
वैज्ञानिक इतिहास

आधी रात का सूरज

(कहानी – संग्रह)

शमशेर सिंह नरूला

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

पहला संस्करण, १९५८

मूल्य : रुपये २.५०

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक
श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली

कथा-क्रम

चाँदनी के फूल

बिस्तर से उठते ही रामकिशोर को सूचना मिली कि 'पप्पी' (पिल्ला) स्नानागार के बड़े डोल में डूबकर मर चुका है। 'पप्पी' कहानियों की एक 'लोकप्रिय' पत्रिका मुँह में दबाए, अपना साहित्य-प्रेम सिद्ध करता, खेलता-कूदता, न जाने किस तरह उसमें जा गिरा था। मुँह बन्द होने के कारण वह मदद के लिए भूँक भी न सका। कोई और दिन होता तो रामकिशोर इस चहेते पिल्ले के लिए एकाध आँसू अवश्य बहाता, परन्तु इस समय वह स्वयं अत्यन्त विक्षुब्ध था। इस समाचार से उसका विक्षोभ और भी बढ़ गया।

रामकिशोर ने सामने रखे कद्दे-आदम आईने में अपने शोकाकुल चेहरे को देखा। रोल्ड-गोल्ड फ्रेम वाला यह जर्मन आईना उसने हाल ही में डेढ़ हजार में खरीदा था। उसने देखा कि सचमुच उसका चेहरा बहुत उतरा हुआ है। आईने के और निकट होकर वह चेहरे के प्रतिबिम्ब को ध्यानपूर्वक देखने लगा।

पूर्वाह्न की धूलि-धूसर किरण उसके चेहरे को उजालने लगी। उसने नाक-भौं सिकोड़कर अपने-आपको विश्वास दिलाया कि वह बहुत म्लान-चित्त है। रात-भर में ही उसका चेहरा इतना उतर गया है। उसका चौड़े-चौड़े रोमकूपों वाला मुँह, चिढ़ाने के-से प्रयत्न में आड़ी-तिरछी रेखाओं से भर आया है। ये बारीक परन्तु गहरी झुर्रियाँ उसके मुख पर गुदे हुए अपूर्ण चित्रों की तरह जान पड़ रही थीं। सच्ची बात भी तो यह है—उसने अपने-आपको विश्वास दिलाते हुए सोचा—जो

अपमानजनक घटना उसके साथ घटी थी, उस पर वह जितना भी दुःखी हो, कम है।

क्या उसके अपमान का कारण शरणार्थी हैं ? शरणार्थी तो बहुत अच्छे हैं। उनके यहाँ आने से उसे लाभ भी बहुत हुआ है। पहली बात यह कि यदि शरणार्थी न आते तो यहाँ से मुसलमानों को कैसे निकाला जाता। मुसलमानों के जाने से उसके चौबीस मकान और कोठियाँ खाली हुईं और प्रत्येक नये किरायेदार से उसने हजारों रुपया 'पगड़ी' का लिया। दूसरी यह कि मुसलमानों का माल और व्यवसाय उसके हाथ कौड़ियों मोल लग गया। चालीस हजार से कम खर्च हुए और बाजार सुधरते ही यह सब सात लाख से अधिक में निकल गया। तीसरे शरणार्थियों के आगमन से उसे अपने कारखाने के लिए सस्ते कारीगर भी मिल गए। यूनियनवादी मँहगे मजदूरों को छाँट-छाँटकर उसने अलग कर दिया है और अब सब तीर की तरह सीधे हो गए हैं। शरणार्थियों की कृपा से ही तो यह सब हुआ।

तो फिर उसके अपमान का कारण क्या कांग्रेस है ? युद्धकाल में उसने लाखों रुपया प्रतिवर्ष अंग्रेजी सरकार को चन्दों और सेविंग सर्टीफिकेटों में दिया, तब भी सरकार के तेवर चढ़े ही रहते थे। छोटे-से छोटे सिपाही को भी सलामी देनी पड़ती थी। फिर कांग्रेस वाले आये। वे खुद ही तो हाथ बांधे फिरते हैं। पहले जो काम लाखों से न होता था, वह अब मुट्ठी-भर में हो जाता है। केवल गांधी टोपी सिर पर रखने से भी काम चल जाता है। इस माने में कांग्रेस बहुत अच्छी है। उनसे अधिक चन्दा तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले ले जाते हैं। और........

तो कल रात क्लब में उसे जो ज़िल्लत उठानी पड़ी, उसका उत्तरदायी कौन है ? कल रात जो अनादर उसे सहना पड़ा, उसकी कोई हद नहीं थी। कांग्रेस की ओर से शरणार्थियों के लिए पुराने कपड़ों की अपील आई थी। एक कोट की तो बात थी, उसके लिए क्या इन्कार किया जाता।

वह खानदानी रईस था। सिर्फ अमीर ही नहीं, रहमदिल भी था; परन्तु कपड़े दान करना कोई बेसोचे-समझे किया जाने वाला काम नहीं था। उसके पास कपड़े तो बहुत थे, परन्तु किसी एक को पुराना नहीं कहा जा सकता था। सभी एक-से-एक बढ़िया थे। अन्त में ट्वीड के ओवरकोट को उसने शरणार्थियों के लिए चुना जो उसने केवल दो बार ही पहना था, परन्तु उसका कालर ठीक कटा हुआ नहीं था। जी कड़ा करके उसने यह ओवरकोट अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को कांग्रेस के दफ्तर में भिजवाने के लिए दे दिया।

प्राइवेट सेक्रेटरी ने अपने कमरे में जाकर इस कोट को भली भांति देखा। इतना उम्दा कोट उसे कभी सपने में भी नसीब न हुआ था। उसका दिल ललचा उठा। उसने वह कोट सँभालकर रख लिया और अपना कद्रे पुराना तथा अपेक्षाकृत सस्ता ओवरकोट चपरासी को देने के लिए खानसामा को दे दिया और साथ ही कांग्रेस के दफ्तर का पता पर्ची पर लिखकर उसे भिजवा दिया।

इतना बढ़िया ओवरकोट देखकर, यह भला कैसे हो सकता था कि खानसामा की नीयत में फर्क न आता! उसने उस ओवरकोट को हथिया लिया और एक पुराना ओवरकोट, जो उसने लड़ाई से पहले सेकण्ड हैंड कोटों की दुकान से खरीदा था, पर्ची समेत चपरासी के हवाले किया। चपरासी के कोट से वह कोट कहीं अच्छा था। उसके अपने कोट का कालर गायब था, सिर्फ एक जेब सलामत थी और आस्तीनों के किनारे बिलकुल फट चुके थे, कुहनियाँ बाहर निकली पड़ती थीं। यह कोट देखकर उससे भी न रहा गया। उसने वह कोट पहन लिया और अपने मैले-चिक्कट फटे हुए कोट को कागज में लपेटकर कांग्रेस के दफ्तर में दे आया।

कुछ समय तक वह कोट कांग्रेस के दफ्तर में 'सेठ रामकिशोर का शरणार्थियों को उपहार' के कार्ड के साथ लटका रहा और कल कांग्रेस का एक कार्यकर्ता उस कोट को मरे हुए चूहे की तरह छड़ी पर लटकाए

हुए क्लब में आ धमका। आधा घण्टा ठहाके-पर-ठहाका लगता रहा और वह लज्जा एवं ग्लानि से पानी-पानी होता गया। सबसे अधिक दुःख-पूर्ण बात तो यह थी कि इन कमीने नौकर लोगों में से किसी को निकाला भी नहीं जा सकता, क्योंकि शरणार्थियों में इतने अच्छे खान-सामे आदि न मिल सके थे।

रात के इस अपमान का प्रभाव अभी तक उस पर बाकी था और आज जागते ही सबसे पहली खबर उसे पप्पी की मृत्यु की मिली। उसके दोनों बच्चे इस पप्पी से दिलोजान से मुहब्बत करते थे। वह उन्हें रो-रोकर जान हलकान करने से कैसे रोकेगा, इस विचार से वह और भी खिन्न हो उठा। इस समय वह अपने-आपको उस दीवार-घड़ी के समान अनुभव कर रहा था जिसकी चाबी चिरकाल से खत्म हो चुकी हो और जिसका एक-एक पुर्जा और स्प्रिंग मैल और धूल से जम चुका हो। उसका कण्ठ अरोये आँसुओं से रुँध गया और वह अपने-आपको तुच्छ और बलहीन-सा अनुभव करने लगा।

सच पूछिए तो उसकी प्रत्येक सुबह पराजय से आरम्भ होती थी। उसका जीवन ही एक शाश्वत पराजय थी। जो वह सदैव करना चाहता था, वह यह था—सुबह सात बजे उठना, बगीचे के बराबर वाली खिड़की के सामने खड़े होकर व्यायाम करना, ठण्डे पानी से शावर-बाथ लेने के बाद हवन-मण्डप में सन्ध्या आदि और इसके बाद बाल-बच्चों के साथ 'ब्रेक-फास्ट' की मेज पर 'प्रधान' का कार्यभार सँभालना और फिर कारखाने को जाते समय बच्चों को 'कन्वेण्ट' (अँग्रेजी स्कूल) छोड़ते जाना। परन्तु वस्तुतः जो होता था वह यह कि रात को नींद के लिए उसे 'वैरानोल' की टिकिया खानी पड़ती जबकि उसकी पत्नी तो पलंग पर लेटते ही खर्राटे भरने लग जाती। ये स्त्रियाँ भी कितनी अजीब होती हैं! जब उनसे बातें करने को जी चाहता है तो वे सो जाती हैं और जब आप सोना चाहते हों तो वे कैंची की तरह जबान चलाकर नींद हराम कर देती हैं। 'वैरानोल' की टिकिया हाथ में पकड़े हुए वह

चिरकाल तक अपनी पत्नी की गहरी साँसें गिनता रहता। उसे वह टिकिया खाने से ऐसी घिन होती जैसे वह कोई अत्यन्त नीच काम कर रहा हो। लाचार-सा होकर वह पानी के एक-दो घूँटों के साथ टिकिया निगल जाता।

अब इस ओषधि का असर भी कम होता जा रहा था। नींद उखड़ी-उखड़ी-सी रहती। वह अभी सोने का प्रयत्न ही कर रहा होता कि प्रातः उठने का भय उसे व्याकुल करने लग जाता। नौकर-चाकर घर का काम-काज शुरू कर देते और उनकी खटपट की आवाज स्वप्नों के स्वर बन जाती, अथवा उसे नींद ही में कारखाने की मशीनों का पूरी रफ्तार से चलने का शोर सुनाई देने लगता और वह आँखें और भी जोर से भींचकर और रेशमी चादर तानकर टाँगें पसार देता। उसे मालूम होने लगता कि संसार की मधुरतम वस्तु मृत्यु है, आराम से लेटकर जीने की इच्छा तक तज देनी चाहिए; परन्तु उफ, उससे तो यह भी नहीं हो पाता।

जागने पर दिनचर्या प्रारम्भ करना उसके लिए कुछ कम कठिन न था। पास के कमरे में पहले उसकी माँ खाँसती रहती थी और वह समझता था कि इसी कारण उसकी नींद टूट जाती है। लेकिन माँ को नौकरों के क्वार्टरों में भेज देने पर भी उसकी नींद उचाट रहती थी।—और अभी एकाध ही झपकी आई होती कि नौकर कमरे में 'इनहेलिंग मशीन' लेकर आ पहुँचता। उसकी पत्नी की आज्ञा थी कि नौकर ठीक नौ बजे वह यन्त्र लेकर कमरे में पहुँच जाय। अत्यधिक सिगरेट पीने से उसके कण्ठ में काँटे चुभते रहते थे और यदि जागते ही वह इस यन्त्र से भाप की साँस न खींचता तो उसकी आवाज तक नहीं निकल सकती थी। परन्तु अब इसका असर भी कम होता जा रहा था और वह नित्य नौकरों से झगड़ता रहता था कि वे अब पानी और सनोबर के तेल का ठीक मात्रा में मिक्सचर नहीं बनाते।

यह नहीं कि भाप लेने के बाद तुरन्त ही वह पलंग से उठ जाता

हो। कई बार तो वह घण्टा-घण्टा-भर पलंग पर बैठा शून्य दृष्टि से सामने की तरफ देखता रहता। आखिरकार वह बाथरूम में जाकर अनीमा लेकर नहाने की तैयारी आरम्भ करता। उसे पानी से इतना डर लगता था जितना दूसरों को आग से भी नहीं लगता। हाथों में साबुन लगाए वह देर तक निश्चेष्ट बैठा रहता और कभी-कभी अँगूठे और तर्जनी को मिलाकर बच्चों की भाँति साबुन का 'शीशा' बनाने लग जाता।

उसे प्रत्येक कार्य दुःसाध्य मालूम होता था। उसे खेद इस बात का था कि दयानिधान परमेश्वर के पास केवल उसके लिए ही क्यों कोई सुखदायक दिन नहीं है। वर्षा उसके चित्त की आकुलता में वृद्धि कर देती, धूप उसके मस्तिष्क को और भी सूना कर देती।

उस दिन उससे स्नानागार में भी अधिक देर न बैठा गया। वह अत्यन्त बेचैन था और शिथिल-सा, खिन्न-सा कद्-आदम आईने के सम्मुख खड़ा अपने उतरे हुए चेहरे के प्रतिबिम्ब का निरीक्षण कर रहा था। उसे लग रहा था कि अब उससे कोई और काम न हो सकेगा। उसके विचार में दुखी होना दिन-भर के लिए काफी काम था।

उसकी आँखें अपने प्रतिबिम्ब पर लगातार जमी रहतीं। उसने देखा कि उसके होठों पर मुस्कान खेल रही है। होठ बन्द करके उसने मुस्कराहट खत्म करने की कोशिश की, परन्तु उसके जबड़े अकड़े रहे। वह कहकहा भी न लगा सका, अलबत्ता इस कोशिश में उसके होठों के कोने अत्यन्त उदासीनता के भाव से लटक गए और आकृति मलिनतर हो गई। टकटकी लगाकर देखते रहने से उसकी आँख में पानी की एक बूँद आ गई थी। उसने पलक झपककर उसे गिराया और जोर से छींक मारी। साथ ही पीछे से पत्नी की आवाज आई, "आप तो बच्चों से भी बढ़कर हठी हैं। लाख कहा कि रबर के स्लीपर जुराबों के बिना पहनने से सरदी लग जाती है, लेकिन......"

पत्नी की अप्रत्याशित उपस्थिति से वह भौंचक-सा रह गया। वह उसके समीप सोफा पर आ बैठा। सारी दुनिया में उसकी चतुराई की

चर्चा थी। लोग मुँह ताकते ही रहते थे और वह चुटकियों में मिट्टी का सोना बना लेता था। किसी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उसने करोड़ों रुपये का चमड़े की कतरन से मुरब्बा बनाकर फौज को सप्लाई किया। उसने ताने-बाने में 'फेर-फार' करके फौजी कपड़े से दुगना कमाया। अपने कारखानों का आधा माल वह 'ब्लैक' में बेचा करता था।

सब उसकी कुशलता की दाद देते हैं, परन्तु उसकी पत्नी उसे कोरा बुद्धू ही समझती है। उसकी नुक्ताचीनी सुनकर उसे स्वयं कई बार खयाल हो आता कि रुपया कमा लेना और है और अक्ल कुछ और। कुछ देर उनमें वही बातें होती रहीं जो पति-पत्नी में प्रायः होती हैं—फरवरी में ही बला की गरमी पड़ने लग गई है। तुम्हारा जुकाम अभी अच्छा नहीं हुआ। मूँग की दाल का भाव दो पैसा फी सेर बढ़ गया है। 'काका' को नौकर नें ठण्डा दूध पिला दिया, दस्त आ रहे हैं। 'बेबी' को आया ने गरम दूध दे दिया, मरोड़ हो रहे हैं, इत्यादि।

उसकी पत्नी एक सचित्र फिल्मी पत्रिका के पन्ने उलटने लगी। उसने देखा कि वह उसे पढ़ नहीं रही है और न चित्र ही देख रही है, केवल पन्ने उलट रही है। उसने बढ़िया वस्त्र पहने हुए हैं। कहीं बाहर जाने की तैयारी जान पड़ती है। पशमीने का जैकट हालीवुड टेलरिंग शाप वालों ने इस उस्तादी से सीया था कि उसका बदन खूब उभरा हुआ और चुस्त दीख पड़ता था। उसके हाथ में छोटा-सा रूमाल था, जिसमें वह बार-बार खाँस रही थी। उसका लम्बूतरा चेहरा बहुत पतला और तीखा-सा था। उसकी मोटी-मोटी बेहद काली आँखें ग़म में डूबी हुई महसूस होती थीं और विषाद और लालिमा की दो गहरी झीलें लगती थीं। इस मीठी-मीठी मर्मस्पर्शी उदासी ने उसके 'मेक-अप' किये मुखड़े को अत्यन्त आकर्षक बना दिया था।

ऐसा नहीं था कि यह सौन्दर्य उसकी पत्नी को बिना प्रयत्न किये प्राप्त हो गया हो। इसके लिए उसे समय और धन का जी खोलकर व्यय करना पड़ा था। उसकी पत्नी को सप्ताह में एक-दो बार उन स्थानों

पर अवश्य जाना पड़ता था जहाँ अनेक चीजों से चेहरे को खूबसूरत बनाया जाता है, अन्यथा सौन्दर्य मन्द पड़ जाता और असली चेहरा छिपाए नहीं छिपता।

ब्यूटी-एक्सपर्ट ने उसे छः आकृतियों में से एक चुनने के लिए कहा था—गम्भीर, शरमीली, शरारती, शोख, हँसमुख और घमण्डी। उसने शोख बनना पसन्द किया था। उसे चेहरे पर एक विशेष ढंग से एक विशेष 'शेड' वाले पाउडर की तहें जमाना सिखा दिया गया था। पाउडर के पलेथन के बावजूद उसकी पत्नी की आँखें सूनी-सूनी-सी मालूम हो रही थीं। ऐसा मालूम होता था, मानो उसने 'पप्पी' के गम में अविरल आँसू बहाए हों।

"कहाँ की तैयारी है, डार्लिंग ?" उसे और कोई बात न सूझी।

"ग्लैमर," उसकी पत्नी ने तड़ाक से उत्तर दिया और सविजय मुस्कराई।

'ग्लैमर' जौहरी की दुकान पर एक बहुमूल्य हार था, जिस पर 'मेड इन नेपल्स' लिखा हुआ था। उसकी कीमत दो हजार रुपये थी, परन्तु धनिक कितने ही बड़े दिल का क्यों न हो, कभी-न-कभी मक्खीचूस बन ही जाता है। हार के लिए सप्ताह-भर गृहयुद्ध हुआ और अन्त में सदा की भाँति उसे ही पत्नी के आगे हथियार डाल देने पड़े।

उसकी पत्नी उठकर चली गई और वह पतली साड़ी में छलकती उसकी देह-यष्टि को देखता रह गया।

किन्तु पत्नी को शीघ्र ही वापस आते देखकर उसके अचरज की सीमा न रही। उसके हाथ में वह हार भी नहीं था जिसके लिए उसने सप्ताह-भर से नाक में दम कर रखा था। उसने खयाल किया कि अगर हार बिक गया होगा तो एक और मुसीबत का सामना करना पड़ेगा—कहीं इस गम में उसे दिल की बीमारी का दौरा न पड़ जाय।

"बिक चुका था ?" उसने सहमी हुई आवाज से डरते-डरते पूछा।

"नहीं, वहीं शो-विण्डो में पड़ा हुआ था। यदि अठवारे-भर में

किसी और ने उसे खरीदने के लायक नहीं जाना तो मैं ही क्यों उसे ले आती ?"

रामकिशोर ने सन्तोष की साँस ली और मौन रहने में भलाई जानी। निस्सन्देह उसकी पत्नी उस पारसल के समान थी जिस पर लिखा रहता है—'काँच, सावधान !' वह इतनी दुबली-पतली थी कि बात करते-करते ही थक जाया करती थी। क्यूटेक्स के 'रैडडलिशयिस' रंग वाले नन्हे-नन्हे नखों से सज्जित हाथों को परों की तरह तोलकर वह प्रायः अपना भाव स्पष्ट करती थी। विवाह से पूर्व भी वह कम दुबली न थी। वह इकलौती बेटी थी। अत्यधिक लाड़-प्यार किये जाने से वह सदा बीमार रहती थी या सदा बीमार रहने के कारण उसके माता-पिता उससे अत्यधिक लाड़-प्यार करते थे। जो भी हो, कैलशियम की विलायती टिकिया नित्य इस्तेमाल करने के बावजूद उसकी कैलशियम की कमी कभी पूरी न हुई। बचपन में चार-पाँच बीमारियों के एक साथ हो जाने से उसका दिल अत्यन्त कमजोर हो गया था, अतः उसकी पूरी-पूरी हिफाजत करनी पड़ती थी।

रामकिशोर ने इस लड़की के साथ जब विवाह करने का विचार प्रकट किया था तो पहले यह प्रस्ताव इस कारण अस्वीकार कर दिया गया कि लड़की की सेहत इसकी इजाजत नहीं देती। उसके बाप के पास धन बहुत था तो क्या हुआ, उसका स्नेह भी तो असीम था और उसे आखिरकार जी न हारने का फल मिला। हालाँकि डॉक्टर अब भी यही कहते हैं कि उसकी पत्नी केवल कुछेक मास की मेहमान है, किन्तु उसे विश्वास होता जा रहा था कि वह खुद, ससुर और सास की तरह, उसकी तीमारदारी करते-करते चल बसेगा।

वह जिले-भर में टैनिस का चैम्पियन था। उसने अब अपना यह प्रिय खेल खेलना बन्द कर दिया था। यह इस कारण नहीं कि पत्नी मना करती थी, बल्कि जब कभी वह क्लब जाता था, संयोग से उसकी पत्नी को तभी दिल की बीमारी का दौरा भी पड़ जाता था।

दोनों इसी उधेड़-बुन में थे कि बच्चों को कैसे बताया जाय कि 'पप्पी' मर गया है। इसी विषय पर बात शुरू हुई। अन्त में यह तय पाया कि जब बच्चे स्कूल से वापस आयें तो उनका 'पापा' (बाप) दूसरे कमरे में चला जाय और 'मम्मी' (माँ) प्यार-दिलासे से यह समाचार उन्हें दे।

रामकिशोर के जी में रह-रहकर आता कि कोट वाली बात भी उसे बताए, परन्तु वह शरणार्थियों का जिक्र अगर छेड़ता तो उसकी बीवी बात पलट देती। वह सोचने लगती कि यह क्यों इस प्रकार की फिजूल बातें कर रहा है, क्या गांधी टोपी का इसके दिमाग पर भी असर पड़ने लग गया है?

बच्चों के लौटने पर 'पप्पी' की खबर उनकी माँ ने इधर-उधर की हज़ार बातें बनाकर अत्यन्त प्यार-दुलार से उन्हें सुना दी। लेकिन यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि वे रोये-चिल्लाये नहीं। वे केवल एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गए और अपने कमरे में चले गए।

पिता भी आश्चर्य में मुँह बाए बाहर निकला। इन लड़के-बालों की मुहब्बत ऐसी ही होती है, यह कहकर उसने अपने-आपको सन्तुष्ट किया। 'पप्पी' से उनका इतना हेल-मेल और संग-साथ था और अब उसकी मृत्यु पर उनकी हर समय टपकती रहने वाली आँखों में आँसू की एक भी बूँद नहीं थी। उसकी पत्नी ने अचरज में आँखें और भी फैला दीं।

उसने बच्चों को मिठास और प्यार से भीगी हुई आवाज दी—
"डियर इन्दु, स्वीट भाषी!"

क्षण-भर के लिए सन्नाटा छा गया। कोई उत्तर नहीं मिला और फिर एकदम उन दोनों की पूरे जोर से रोने और चीखने की आवाजें आने लगीं। वे आँखों में मुट्ठियाँ ठूँस-ठूँसकर फूट-फूटकर रोते हुए उस कमरे में आ गए। उनकी माता ने फर्श पर बैठते हुए उनको बाँहों में लेकर पूछा, "क्या बात है?"

"पप्पी मल गया !" वे दोनों एक साथ हड़बड़ाए।

"मैंने तो तुम्हें बताया था," मभी उनका चुम्बन लेकर उन्हें पुचकारते-दुलारते हुए बोली।

"हमने तो पापा समझा था," यह कहते-कहते बच्चों ने 'पापा' की ओर चोर नजर से देखा।

सेठ रामकिशोर की आँखें फटी-की-फटी रह गईं और उसका मुँह भी लटक गया।

गोमाता

जब सीतलप्रसाद देहाती इक्के में हचकोले खाता अपने गाँव के करीब पहुँचा तो दिन ढल चुका था। थकी-माँदी सांझ गाँव की ओर रेंग रही थी और कुत्ते अत्यन्त निडरता से उस पर भूँक रहे थे।

वह इक्के से उतर पड़ा। यहाँ सड़क पर बहुत बड़ा गड्ढा जम्हाई ले रहा था और इक्का आगे नहीं जा सकता था। वह सड़क भी भारत की अधिकतर सड़कों की तरह फुट-दो-फुट गहरी रेत और धूल का दुर्गम रास्ता थी जो बरसात में कीच और दलदल की अच्छी-खासी मोरी बन जाती थी।

सीतल ने गड्ढा फलाँगा, धूल से सने बाल और वस्त्र झाड़े। खँखार-कर कण्ठ साफ करता हुआ वह गाँव की ओर लम्बे-लम्बे डग भरने लगा। गोधूलि की वेला थी। सुरमई प्रकाश में चमगादड़ों ने डुबकियाँ लगाना आरम्भ कर दिया था। दो-तीन गज ऊँची मटमैली झोंपड़ियों में से सुल-गते हुए उपलों का निर्जीव धुआँ बड़ी शिथिलता से आकाश की ओर करवटें ले रहा था। अपरिचित विचार, नन्ही-नन्ही सुरसुरियाँ-सी बन, उसके मस्तिष्क में रेंग-रेंगकर उसे परेशान कर रहे थे।

ग्वाले ग्राम की गायों को जंगल से वापस ला रहे थे। जिसे वह लोग जंगल कहते थे, वह वृक्षहीन झाड़-झंखाड़रहित बंजर चटियल भूमि थी, जिस पर बरसात में थोड़ी-सी घास उग आती, जो एकाध मास में ही चर ली जाती। तत्पश्चात् पशु-समूह प्यास और खुश्की से फटी हुई जमीन की दरारों में घास की पत्तियाँ या छोटी-छोटी झाड़ियाँ खोजता फिरता। इस

आहार से उन्हें जितनी शक्ति हासिल होती उससे कहीं अधिक उसकी खोज में क्षय हो जाती। उनकी मन्द सन्तुष्ट आँखों में शत-शत वर्षों की भूख अंकित थी। बहुत सी गायें तो केवल कंकाल-मात्र थीं, जिनकी बेढब हड्डियाँ पतली मांसहीन त्वचा से अत्यन्त भयानक और घिनावनेपन से झाँक रही थीं। प्रायः सबकी देह में घर किये हुए घाव और नासूर उन्हें सता रहे थे और उन पर मक्खियों के समूह भिनभिना रहे थे। इन गोपालकों ने कभी भी अपने ढोर-डंगरों के लिए चारा नहीं बोया था। अपने लिए ही उनके पास पर्याप्त भूमि नहीं थी। प्रायः इन गायों की तनिक भी परवा न की जाती। इनमें बहुत सी, कई वर्ष हुए, पाव-आध पाव दूध देकर सूख चुकी थीं।

कुछेक बछड़े, जो गल्ले के साथ न रह सके थे, सिहरती हुई नन्ही-नन्ही टाँगों से उनके पीछे-पीछे लड़खड़ा रहे थे। उनकी अशक्त कोमल टाँगें बड़ी कठिनाई से उठ रही थीं। रात को उन्हें झोंपड़ियों से बाहर निकाल दिया जाता था, ताकि वे अपनी माताओं का दूध चूसकर इस पाव-आध पाव की सम्पत्ति को और भी क्षीण न कर दें। भूख, वन-भ्रमण की थकान या रात की सरदी से जब वह मुक्ति-लाभ कर लेते तो उनकी खाल उधेड़कर उसमें घास-फूस भर दिया जाता, टाँगों के नीचे चार छड़ियाँ लगा दी जातीं और दुहते समय उसे गाय के सम्मुख खड़ा कर दिया जाता ताकि वह ममतावश दूध देती रहे।

सबके पीछे गाँव की सर्ववृद्धा गाय डगमगाती हुई बढ़ी आ रही थी। भूरा कासनी रंग, मरियल टाँगें, दुखती हुई आँखें, ढीले पपोटे जो किनारों से विचित्र प्रकार से ऊपर उठे हुए थे, मानो वह किसी गहरे सोच में डूबी हुई हो। उसकी हड्डियाँ मांसहीन त्वचा को चीरकर बाहर निकल रही थीं। प्रत्येक हड्डी के उभरे हुए किनारे साथ वाली हड्डी की छाया में अत्यन्त करुणाजनक लग रहे थे। उसकी देह पर बहुत से घाव और फोड़े थे। एक कौआ उसके कूल्हे पर बैठा एक गहरे घाव में चोंच मार रहा था। एक और कौआ काँय-काँय करता ऊपर मँडरा रहा था। चरवाहों

गोमाता

जब सीतलप्रसाद देहाती इक्के में हचकोले खाता अपने गाँव के करीब पहुँचा तो दिन ढल चुका था। थकी-माँदी सांझ गाँव की ओर रेंग रही थी और कुत्ते अत्यन्त निडरता से उस पर भूँक रहे थे।

वह इक्के से उतर पड़ा। यहाँ सड़क पर बहुत बड़ा गड्ढा जम्हाई ले रहा था और इक्का आगे नहीं जा सकता था। वह सड़क भी भारत की अधिकतर सड़कों की तरह फुट-दो-फुट गहरी रेत और धूल का दुर्गम रास्ता थी जो बरसात में कीच और दलदल की अच्छी-खासी मोरी बन जाती थी।

सीतल ने गड्ढा फलाँगा, धूल से सने बाल और वस्त्र झाड़े। खँखार-कर कण्ठ साफ करता हुआ वह गाँव की ओर लम्बे-लम्बे डग भरने लगा। गोधूलि की वेला थी। सुरमई प्रकाश में चमगादड़ों ने डुबकियाँ लगाना आरम्भ कर दिया था। दो-तीन गज ऊँची मटमैली झोंपड़ियों में से सुल-गते हुए उपलों का निर्जीव धुआँ बड़ी शिथिलता से आकाश की ओर करवटें ले रहा था। अपरिचित विचार, नन्ही-नन्ही सुरसुरियाँ-सी बन, उसके मस्तिष्क में रेंग-रेंगकर उसे परेशान कर रहे थे।

ग्वाले ग्राम की गायों को जंगल से वापस ला रहे थे। जिसे वह लोग जंगल कहते थे, वह वृक्षहीन झाड़-झंखाड़रहित बंजर चटियल भूमि थी, जिस पर बरसात में थोड़ी-सी घास उग आती, जो एकाध मास में ही चर ली जाती। तत्पश्चात् पशु-समूह प्यास और खुश्की से फटी हुई जमीन की दरारों में घास की पत्तियाँ या छोटी-छोटी झाड़ियाँ खोजता फिरता। इस

आहार से उन्हें जितनी शक्ति हासिल होती उससे कहीं अधिक उसकी खोज में क्षय हो जाती। उनकी मन्द सन्तुष्ट आँखों में शत-शत वर्षों की भूख अंकित थी। बहुत सी गायें तो केवल कंकाल-मात्र थीं, जिनकी बेढब हड्डियाँ पतली मांसहीन त्वचा से अत्यन्त भयानक और घिनावनेपन से झाँक रही थीं। प्रायः सबकी देह में घर किये हुए घाव और नासूर उन्हें सता रहे थे और उन पर मक्खियों के समूह भिनभिना रहे थे। इन गोपालकों ने कभी भी अपने ढोर-डंगरों के लिए चारा नहीं बोया था। अपने लिए ही उनके पास पर्याप्त भूमि नहीं थी। प्रायः इन गायों की तनिक भी परवा न की जाती। इनमें बहुत सी, कई वर्ष हुए, पाव-आध पाव दूध देकर सूख चुकी थीं।

कुछेक बछड़े, जो गल्ले के साथ न रह सके थे, सिहरती हुई नन्ही-नन्ही टाँगों से उनके पीछे-पीछे लड़खड़ा रहे थे। उनकी अशक्त कोमल टाँगें बड़ी कठिनाई से उठ रही थीं। रात को उन्हें झोंपड़ियों से बाहर निकाल दिया जाता था, ताकि वे अपनी माताओं का दूध चूसकर इस पाव-आध पाव की सम्पत्ति को और भी क्षीण न कर दें। भूख, वन-भ्रमण की थकान या रात की सरदी से जब वह मुक्ति-लाभ कर लेते तो उनकी खाल उधेड़कर उसमें घास-फूस भर दिया जाता, टाँगों के नीचे चार छड़ियाँ लगा दी जातीं और दुहते समय उसे गाय के सम्मुख खड़ा कर दिया जाता ताकि वह ममतावश दूध देती रहे।

सबके पीछे गाँव की सर्ववृद्धा गाय डगमगाती हुई बढ़ी आ रही थी। भूरा कासनी रंग, मरियल टाँगें, दुखती हुई आँखें, ढीले पपोटे जो किनारों से विचित्र प्रकार से ऊपर उठे हुए थे, मानो वह किसी गहरे सोच में डूबी हुई हो। उसकी हड्डियाँ मांसहीन त्वचा को चीरकर बाहर निकल रही थीं। प्रत्येक हड्डी के उभरे हुए किनारे साथ वाली हड्डी की छाया में अत्यन्त करुणाजनक लग रहे थे। उसकी देह पर बहुत से घाव और फोड़े थे। एक कौआ उसके कूल्हे पर बैठा एक गहरे घाव में चोंच मार रहा था। एक और कौआ काँय-काँय करता ऊपर मँडरा रहा था। चरवाहों

के उसे तेज़ चलाने के लिए हिलाने-मरोड़ने से उसकी पूँछ की हड्डी टूटकर ढीली पड़ चुकी थी, इसलिए वह इसकी सहायता से कौए को उड़ाने में असफल हो रही थी। सीतल इस बूढ़ी गौ की ओर बढ़ा और उसने अनुभव किया कि पीड़ा से उसकी भूरी पलकें फड़फड़ा रही हैं और दाँत किचकिचा रहे हैं। सीतल ने मिट्टी की दो मुट्ठियाँ घावों पर बिखेर दीं और गाँव की ओर बढ़ने लगा।

शंकरी चाची भी इसी समय ग्राम में प्रवेश कर रही थी। जब वह कहीं गाँव से बाहर गई हुई थी तो उसका इकलौता लड़का पागल कुत्ते के काटने से मर गया था। रात को आसपास के बियाबान से सियार गाँव में आ जाते और सारी रात उनकी कुत्तों से लड़ने की आवाज़ें सुनाई देती रहतीं। अक्सर पागल सियार कुत्तों को काट जाते और हर साल दर्जन-आधी दर्जन गाँव वाले इन कुत्तों की बलि चढ़ते। इन रोगग्रस्त क्षुधित कुत्तों को मरवाया नहीं जा सकता था, क्योंकि वे लोग जीव-हत्या का पाप नहीं करना चाहते थे।

पुत्र की मृत्यु शंकरी के लिए असह्य थी। वह बावली-सी हो रही थी। वह जब स्त्रियों को पनघट जाते देखती तो दमे से अटकते स्वर में चिल्लाने लग जाती, 'बेटियो, बच्चों को घर अकेले मत छोड़ जाओ', गायों से पूछती फिरती कि बछड़ों को अकेले छोड़कर कहाँ जा रही हो। वह सारा दिन जंगल में चिड़ियों के पीछे-पीछे लड़खड़ाती फिरती और उनसे विनती करती कि वे अपने बच्चों को अकेले न छोड़ जायँ। उसके बाल झड़ चुके थे। उसका मुरझाया और सिकुड़ा हुआ चेहरा झुर्रियों से भरा हुआ था। परछाइयों में आवृत नेत्र टुकुर-टुकुर करते रहते। उसके होठों के कोण अत्यन्त उदासीनता से नीचे लटक रहे थे। सीतल को देख शंकरी के फटे हुए होठों में मुस्कराहट की हल्की-सी रेखा खिंच जाती, परन्तु इससे उसकी आकृति का विरक्त भाव और तीक्ष्ण हो जाता।

गाँव के शुरू में ही ठाकुरद्वारा था। साँझ की आरती हो रही थी और पुजारी गला फाड़-फाड़कर 'ओ३म् जय जगदीश हरे' गा रहे थे।

मन्दिर के पिछवाड़े बटदादा कुबड़ा हुआ खड़ा था। निर्बल साँड उसकी छाया में लेटे मिट्टी से देह रगड़ रहे थे। जब कभी किसी पर कोई विपत्ति पड़ती तो वह मन्दिर को साँड दान देने की मिन्नत मानता। मनोरथ सिद्ध होने पर वह सस्ते-से-सस्ता साँड ला चढ़ा देता और वह खराब साँड गाँव की गायों की नस्ल बिगाड़ता फिरता। अब सीतल अलीगढ़ से अच्छी नस्ल के साँड का प्रबन्ध करके आ रहा था, जिसे लेकर परसों हाट के दिन डेरीफार्म वाले आने वाले थे।

जब सीतल ठाकुरद्वारा से आगे बढ़ा तो मन्दिर के कुएँ पर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। गाँवों के बलिष्ठ स्वास्थ्य और चिर-यौवन की बातें, जो वह सदा शहर में सुना करता था, निरी मिथ्या ही निकलीं। यहाँ आकर तो उसने पीले बीमार चेहरे ही देखे। इन अभागी स्त्रियों पर तो कभी तरुणाई आती ही नहीं। बचपन और फिर लड़कपन के बाद ही बुढ़ापा आ जाता है।

कुएँ की चरखी की खड़-खड़, डोल का धड़ाम से पानी में गिरने का धमाका और फिर उसके ऊपर खींचे जाने की चूँ-चूँ, सीतल के कान इन सब स्वरों के जानकार हो चुके थे। रीति के अनुसार, पानी भर रही स्त्री मिट्टी और कीच में सने पैर से रस्से को चरखी पर रखने का प्रयत्न कर रही थी। डोल के टूटे हुए पेंदे में छेद थे और ऊपर आने तक उसका पानी आधे से भी कम रह जाता था।

सीतल का घर गाँव के दूसरे किनारे पर था। मंगतराम की दुकान, जो उसके मकान के करीब ही थी, बन्द हो चुकी थी; परन्तु बहुत से कुत्ते उस दुकान के आगे गिरे हुए सकोरे और पत्ते चाट रहे थे और एक-दूसरे पर भयानक क्रूरता से भूँक रहे थे। सीतल को देखते ही उन्होंने भूँकना और लड़ना बन्द कर दिया। कई कुत्ते टाँग उठाकर चमड़ी खुजलाने लगे, कई थूथनी पर भिनभिनाती हुई मक्खियों पर मुँह मारने लगे। एक कुत्ता पूँछ टाँगों में दबाकर बैठ गया। कई कुत्तों की बालहीन खालें खुजली, घावों तथा नासूरों से गल-सड़ चुकी थीं और उनमें से सूखी-

पतली हड्डियाँ इस प्रकार झाँक रही थीं मानो कोई दुखी प्राणी दुःख देने वाले को ताक रहा हो। ये कुत्ते नरक के पापियों की भाँति अपनी घिनावनी कोढ़ी देहों को इधर-उधर घसीटते हुए सारा दिन गलियों में गन्दगी चाटते फिरते थे। वे अपनी गैर-हैवानी आँखों से प्रत्येक को घूरते रहते, सन्ध्या-समय नियम के अनुसार उस दुकान के सामने इकट्ठे होते और रात-भर धमसार मचाए रहते।

मंगतराम की दुकान के बगल में भेड़े का एक पेड़ था जिसके नीचे एक चितली गाय लेटी रहती थी। डेढ़ वर्ष हुए जब मंगतराम की माता का देहान्त होने लगा था तो उसने गोदान की इच्छा की थी। मंगतराम समीप के नगर से वह गाय खरीद लाया था। फूका करने से वह बहुत वर्ष हुए सूख चुकी थी। इसीलिए मंगतराम को यह गाय बहुत सस्ती मिल गई थी। ब्राह्मण को रीत्यनुसार यह गाय दान कर देने के बाद इसे यहाँ लाकर लिटा दिया गया और यहाँ वह इस भेड़े के पेड़ से गिरे पत्ते खाकर जीवित रहने का प्रयत्न कर रही थी। अब इस गाय की गरदन पर चिचड़ी लगी हुई थी जो धीरे-धीरे बहुत फैल चुकी थी और उसके हृदय तक पहुँचने वाली थी। फिर जैसे कि मंगतराम कहता था, वह स्वाभाविक मृत्यु पा लेगी। सीतल शहर से उसके लिए मरहम लाया था। उसने चिचड़ियाँ टटोल-टटोलकर उन पर मरहम लगाया।

× × ×

सीतल जब घर पहुँचा तो स्वयं उसका चित्त पीड़ा से कराह रहा था। गत पाँच महीनों की स्मृतियों और अनुभवों में इतनी वेदना और विषाद था कि उसका जी भर आया।

उसे इस गाँव में आये पाँच मास से अधिक समय न हुआ होगा। जब वह कॉलेज में पढ़ा करता तो सोचा करता था कि भारत में सात लाख ग्राम हैं। यदि सात लाख युवक अपने जीवन को उनके उत्थान और पुनर्निर्माण के लिए अर्पण कर दें तो दस-पन्द्रह वर्ष में ही इस अभागे देश की काया पलटी जा सकती है। वह एक ऐसा ही युवक बनना

चाहता था। कॉलेज की शिक्षा समाप्त होने पर वह इस गाँव झँझाना में, जो बाँदा से बाईस मील उत्तर में स्थित था, आ बसा था।

गाँव की हालत उसके अन्दाज से कहीं खराब निकली। पहले वह बहुधा सुना करता था कि ग्रामीणों का जीवन सुन्दर और स्वस्थ होता है, परन्तु यहाँ आकर उसने किसानों को अज्ञान, अनथक परिश्रम और गन्दगी में दबा हुआ पाया। उनमें किसी को सुख की हवा भी न लगी थी। शहर के मजदूरों का जीवन भी इतना ही कठिन था, परन्तु उनमें इतनी बेबसी और विरक्ति-भाव नहीं था। ये लोग तो उन अन्धों की भाँति थे जो टटोल-टटोलकर चल रहे हों और हर समय भयभीत रहते हों कि दूसरे के पैरों-तले कुचले न जायँ। यह गाँव भी भारत के अधिकांश ग्रामों की तरह ही कीच, मिट्टी और गोबर की बनी हुई बेढब और बेतरतीब झोंपड़ियों का एक जमघट-सा था। झोंपड़ियाँ बनाने के लिए मिट्टी एक ही जगह से खोदी गई थी, जहाँ बहुत बड़ा गढ़ा हो गया था जो बरसात में अच्छा-खासा जोहड़ बन जाता। आहिस्ता-आहिस्ता सूखकर उसका पानी गाढ़ा होता जाता। ढोर-डंगर उसी में नहाते। गाँव की छोटी जातियों के लोग पीने-नहाने के लिए पानी वहीं से ले जाते और इसमें ही कपड़े-बरतन साफ करते। गाँव का तमाम गन्दा पानी इसी में आ गिरता। इस जोहड़ पर हर मौसम में मच्छरों की छावनियाँ लगी रहतीं जो रात-भर लोगों को चैन न लेने देते।

झोंपड़ियाँ बिलकुल कच्ची बनी हुई थीं—पुआल से ढँपी हुई मिट्टी-कीचड़ की बेजान दीवारें। वर्षा तनिक अधिक हुई और वे बेजान भित्तियाँ बैठ जातीं, नहीं तो छतें जरूर टपकने लग जातीं और लोग टूटी-फूटी खाटों को छत से टपकते हुए पानी से बचाने के लिए एक कोने से दूसरे कोने में घसीटते फिरते। जाड़े की रातें ये अधनंगे लोग उपलों के अलाव के इर्द-गिर्द सिकुड़-सिकुड़कर गुजार देते और जब मई-जून में आँधियाँ और झक्कड़ चलते तो पुआल की हल्की छतें उड़कर कई-कई मील दूर जा गिरतीं और वे निराश्रय रह जाते। झोंपड़ियों में खिड़की या

झरोखे नहीं थे। चूल्हे का धुआँ भीतर ही चक्कर काटता रहता। लालटेन तो क्या, मिट्टी के तेल के मामूली-से लैम्प भी उनके भाग्य में नहीं थे। कड़वे तेल के दीये की लौ से उत्पन्न काली सँपूलियाँ हवा को डस-डसकर विषाक्त बनाया करतीं। किसी भी घर में पाखाना न था। बच्चे गलियों में बैठ लेते, स्त्री-पुरुष बाहर खेतों में चले जाते। इस गन्दगी के कारण मक्खियाँ, टिड्डे और कीड़े प्रायः इतना उपद्रव मचाए रहते कि जीना दूभर था।

गाँव में आते ही सीतल वहाँ के सुधार-कार्य में लग गया। बच्चों के लिए पाठशाला खोली। अछूतों के लिए पानी का पम्प लगाया। गलियों में मोरियाँ खुदवाईं और गन्दे पानी को जोहड़ के स्थान पर खेतों में ले जाने का प्रबन्ध किया। बोआई के लिए अच्छे बीज मँगवाए। गाँव के पुराने टूटे-फूटे हल मुश्किल से जमीन को कुरेद ही सकते थे, उसने किसानों के बारी-बारी से प्रयोग करने के लिए बढ़िया हल बनवाए। वह गाँव के जीवन को हर पहलू से स्वस्थतर बनाने के प्रयत्न करने लगा। इस कार्य में उसे अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता, परन्तु वह किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का विचार किये बिना अपनी धुन में लगा रहता।

गाँव की सबसे दुश्वार समस्या वहाँ की गायें थीं। एक सौ सत्रह की कुल संख्या में से सौ से अधिक सूखी हुई थीं। शेष पाव-ड़ेढ़पाव से अधिक दूध न दे सकती थीं जो गाँव की आवश्यकताओं से कहीं कम था। रात-भर ये गायें फसलें खराब करती फिरतीं और सारा दिन बाहर उजाड़ बियाबान में पत्तियों की खोज में बिता देतीं। उनके चारे का कोई प्रबन्ध नहीं था। सीतल ने ग्रामीणों को चारा बोने की प्रेरणा दी और स्वयं मिसरी क्लोवर की दो-पत्तिया दूब मँगवाकर अपनी जमीन में बोई। वह हाथरस से एक दस सेर दूध देने वाली गाय खरीद लाया था जिससे अपनी पाठशाला के बच्चों को दूध पिलाया करता था। गाँव की गायों की नसल को बेहतर बनाने के लिए भी वह यथासम्भव प्रयत्न

करता रहता था।

× × ×

अगली सुबह मुँह-अँधेरे ही सीतल निकटवर्ती ग्रामों में कहने चला गया कि अगले दिन वे अपनी गायें बरदवाने के लिए ले आयें। जब वह सन्ध्या-समय वापस हुआ तो वह दिन-भर के भ्रमण से चूर हो रहा था और उसके पग बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे।

नित्यानुसार चरवाहे गायों की पूँछें मरोड़ते, उनकी पीठ पर छड़ियाँ बरसाते ग्राम में प्रवेश कर रहे थे और उसी प्रकार वही बूढ़ी भूरी गाय उन सबके पीछे लड़खड़ाती हुई आहिस्ता-आहिस्ता चलती जा रही थी। वह उस दिन और भी थकी हुई जान पड़ती थी। परस्पर संघर्ष में उसे उस दिन खाने को कुछ भी मुयस्सर नहीं हुआ लगता था। एकाएक वह रुक गई और गर्द के बादल में छिपे साथियों को एकटक ताकने लगी। उसकी टाँगें जवाब दे चुकी थीं। वह लेट गई और आसपास घूमते कुत्ते उसे गिरती देखकर दौड़ते हुए उसके समीप आ गए। यह देखकर कि गाय का अन्तिम समय आ पहुँचा है, वे जोर-जोर से भूँकने लगे और उनकी भूँक सुनकर गाँव के अन्य कुत्ते भी उधर आ गए तथा अभिलाषापूर्ण थूथनियों से उसे सूँघने और लार-भरी जीभों से उसे चाटने लगे। उनके मुँह में पानी भर आया था और उनकी भूखी पसलियाँ कड़कड़ा रही थीं। गाय ने सिर उठाकर एक-दो बार इधर-उधर हिलाया और फिर बेबस होकर नीचे रख दिया। वह हाँपने लगी। उसके खुले मुँह से जिह्वा लटक रही थी।

कुत्ते भूँकते, चीखते, गुर्राते, हाँपते, तीखे दाँत कचकचाते अपनी अत्यधिक आवश्यकता से बाध्य उसकी बोटियाँ नोचने लगे।

इसी समय सीतल भी वहाँ पहुँच गया। गाय बुरी तरह हाँप रही थी और कुत्तों को करुणार्द्र नेत्रों से ताक रही थी। सीतल को देखते ही कुत्ते पीछे हट गए, सिवा एक गाभिन कुतिया के जिसकी आँखों में कई नन्हे-नन्हे अप्रसूत जीवन भूख से किलबिला रहे थे। अभी अन्य कुत्ते

हिचकते ही रहे कि इस कुतिया ने अत्यन्त बेबाकी से आगे लपककर गाय की जिह्वा को नोच लिया।

गाय तड़पने लगी। उसके डेले उभर आए। उनमें घृणा और क्रोध झलक रहा था। उसकी लीखों-सनी पलकें फड़फड़ाने लगीं। उसके नथुने फूल गए और देखते-ही-देखते वह दुःखों से मुक्त हो गई।

सीतल का रोम-रोम काँपने लगा। उसे आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसका सिर चकराने लगा और उससे वहाँ खड़ा न रहा गया। रास्ते में उसे कुतिया की आँखों में भूख से तड़पते हुए नन्हे-नन्हे जीव, चिचड़ीग्रस्त सफेद गाय की मृत्यु-प्रतीक्षा, उसकी कटी हुई टाँगें, भूरी गाय के घावों में चोंच मारते हुए कौवे, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दीख पड़ रहा था। अनेक पीड़ित स्वर उसके कानों के परदे डगडगा रहे थे।

× × ×

कमरे में पहुँचकर सीतल ने कंपित हाथों से लैम्प रोशन किया और चारपाई पर लेट गया। उसके मस्तिष्क में विचित्र प्रकार के अनगिनत विचार बड़ी तेजी से एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे। अर्धचेतन अवस्था में सीतल की आँखों के सम्मुख गाँव की समस्त गायें घूमने लगीं। मरियल सूखी गायों के उभरे हुए हाड़ों के भीतरी गड्ढे एकाएक उसे अत्यन्त गहरे और अन्धकारमय जान पड़ने लगे जिनमें अनगिनत लोग ठोकरें खा-खाकर गिरते जा रहे थे। गायों की भूखी-नंगी पसलियाँ तेज छुरियाँ बनकर उसके शरीर को चीरने लगीं।

सीतल ने लैम्प की टिमटिमाती लौ की ओर ताका। उसे लगा कि वह उसकी कंपित ठुड्डी को निहार रही है और उसकी मानसिक विलप्तता पर मुस्करा रही है। उसे अत्यन्त ग्लानि अनुभव हुई। उसे जान पड़ा कि उसकी नसों में रक्त के स्थान पर हलाहल भर दिया गया है और उसकी खोपड़ी में कड़वा धुआँ। वह लौ को और भी तन्मयता से देखने लगा। उसे जान पड़ा कि वह उसे उन्मुख करके कह रही है कि 'कभी खारा समुद्र भी शहद की एक-दो बूँदों से मीठा हो सकता है? नगर ही वे

मधुकोष होते हैं जिनमें सभ्यता का शहद पैदा होता है और जब तक भारत के कम-से-कम आधे गाँव इकट्ठे करके शहर नहीं बना दिए जाते तब तक वह अज्ञान दूर नहीं होने का और प्रगति एक स्वप्न-मात्र ही रहेगी।' वह चिरकाल तक लैम्प के चेहरे को ताकता रहा। अपरिचित विचार उसके मस्तिष्क में बवण्डर-सा मचा रहे थे। कभी-कभी ये शान्त भी होते तो विश्रान्ति के ये आक्रमण उस बवण्डर से कहीं अधिक व्याकुलता उत्पन्न कर देते।

गाँव में प्रवेश करते हुए सियारों की हू-हू, हुप-हुप, कुत्तों की करुणामय भूँक, सुअरों की चीखें, उल्लुओं की हूक और मच्छरों की भनभनाहट से उसके कानों के परदे जोर-जोर से डगडगा रहे थे। खिड़की के बाहर हवा वृक्षों को जोर-जोर से झटके दे रही थी। उनके पत्तों की सरसराहट से सीतल को यह अनुभव होने लगा कि पक्षियों के अनन्त झुरमुट किसी और दुनिया की खोज में उड़े चले जा रहे हैं। कुत्तों की भौं-भौं उसे मृत्यु के लिए उनकी बेबस अभिलाषा मालूम होने लगी। उसका अपना जी भी मृत्यु-अभिलाषी हो उठा। उसे अनुभव होने लगा कि ऐसे विचारों और कल्पनाओं का फव्वारा उसके मन में फूट पड़ा है जिनका उसकी प्रकृति से कोई भी सम्बन्ध नहीं और ये अपरिचित विचार उसको अभिभूत करते जा रहे हैं और उसकी हस्ती को अपना साधन बनाना चाहते हैं। कुत्तों की विकराल भूँक तूफान उठाती हुई उसे समीप आती जान पड़ी। एकाएक मंगतराम की दुकान पर उसे उपद्रव-सा उठता हुआ लगा और उसे खयाल आया कहीं कुत्तों की यह फौज उस दुकान के समीप पड़ी बेबस गाय पर न टूट पड़ी हो।

सीतल ने एक जहरीली बुकनी आटे में घोली और मंगतराम की दुकान की ओर चलने लगा। आकाश की नीली मटमैली खामोशी में नन्हे-नन्हे बादल रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक रहे थे। अन्धकार की गहरी घाटियाँ निस्तेज क्लेशित नयनों से उसकी ओर ताक रही थीं। जोहड़ के पंकिल पानी की तह में नन्हे मासूम सितारे कंपमान थे। तमाम

कुत्ते मंगतराम की दुकान के समीप लेटी हुई श्वेत गाय के चौफेर एकत्रित उस पर भूँक रहे थे। उसने बिना पूर्व-विचार के उस ज़हर-मिले आटे को कुत्तों के आगे डाल दिया। वे लिप-लिप उसे चाटने लगे।

× × ×

आगामी प्रातः जब सीतल घर से निकला तो उसे मालूम हुआ कि रात वाले आटे को कुत्तों के अतिरिक्त श्वेत गाय ने भी चाट लिया था। गाँव-निवासी आपस में कानाफूसी कर रहे थे और सीतल को शंकायुक्त नेत्रों से ताक रहे थे।

इतने में अलीगढ़ डेरीफार्म वाले भी साँड लेकर आ गए। हाट का दिन होने के कारण मन्दिर के सम्मुख लोगों का खूब जमवाड़ा था। सब लोग साँड के इर्द-गिर्द इकट्ठे होने लगे। सीतल इस साँड को गाँव के दूसरी ओर जोहड़ के पार ले जाने के लिए भीड़ को एक तरफ करने लगा। लोगों ने इतना मोटा और तन्दुरुस्त साँड पहली बार देखा था। वे भी इसके पीछे हो लिये और उससे छेड़छाड़ करने लगे। ठाकुर कीर्तसिंह का लड़का उसकी पूँछ मरोड़ने लगा। साँड से यह सहन न हुआ और उसने पूँछ छुड़ाकर उस पर सींगों से वार किया तथा भीड़ में से भाग निकला। लोग भी उसके पीछे-पीछे भागने लगे। जमींदार के लड़के को चोट आई थी, यह देख कई आदमी साँड को लाठियों और छड़ियों से पीटने लगे। साँड ने आत्मरक्षा में कुछेक और लोगों को चोटें पहुँचाईं जिससे उनका क्रोध और भी भड़क उठा। वे साँड को उस समय तक पीटते रहे जब तक वह लहूलुहान होकर जमीन पर गिर न पड़ा। सीतल से लोग लाल-पीले थे ही। साँड को बचाने के प्रयत्न में वह भी इतना पीटा गया कि बेहोश हो गया। डेरीफार्म वाले, जिन्हें स्वयं थोड़ी-बहुत चोटें आई थीं, उन दोनों को बैलगाड़ी में डालकर समीपवर्ती नगर की तरफ ले गए।

× × ×

गाँव में गोहत्या घटी थी। मन्दिर के पुजारियों ने हाट न लगने दी।

सन्ध्या-समय पंचायत बैठी और निश्चय हुआ कि प्रायश्चित्तवश गोदान के अतिरिक्त हवन-पूजा पाठादि भी हो। दान के लिए सीतल की गाय थी ही। हवन आदि के लिए पचास रुपये जमींदार दे और बाकी के गाँववालों से संग्रह किये जाने का निश्चय हुआ।

ठाकुर कीर्तसिंह ने सीतल की गाय अपने पास मँगवा ली और गाँव वालों से दो दिन में ही पचास रुपये एकत्र कर लिये। तीसरे दिन वह इस गाय को शहर ले गया। उसे अब कसाई को दो सौ रुपये में बेच दिया और फिर वह गोशाला में गया। गोशाला के द्वार के बाहर कृष्णजी का चित्र बना हुआ था। नीले वर्ण के कृष्णमुरारी श्वेत-स्वस्थ-सानन्द गायों को बांसरी बजाकर मुग्ध कर रहे थे, परन्तु गोशाला के भीतर वही भूखी-सूखी मरणासन्न गायें थीं। वहाँ से ठाकुर साहब ने एक सूखी मरियल गाय, जैसी कि ग्राम में पहले ही बहुत सी थीं, पचास रुपये की खरीदी। इसके पश्चात् बाजार से पाँच रुपये के बताशे लिये और बाकी रुपये सँभाल गाँव लौट आया।

अगली सुबह ठाकुरद्वारा खूब सज रहा था। आम के पत्तों की झण्डियाँ उसके चारों ओर लगी हुई थीं। दार पर केले के पेड़ों के स्तम्भ खड़े थे और दीवारों पर खजूर के चौड़े-चौड़े पत्ते कीलों से गाड़े हुए थे। संगमर्मर के फर्श को पवित्र बनाने के लिए उसे गोबर से लीपा गया था। कृष्णजी की मूर्ति पर चन्द्रकला का मुकुट, जो विशेषातिविशेष अवसरों पर लगाया जाता था, लगा हुआ था।

हवन के पश्चात् ठाकुर कीर्तसिंह ने गाय मँगवा भेजी। उसका समस्त शरीर गेरू से रंगा हुआ था। उसके सींगों पर कनारी और भावली लिपटी हुई थी। उसने तमाम ग्रामवासियों से स्पर्श करवाकर गाय ब्राह्मणों को सौंपाली। वे सीतल की गाय की बजाय यह अधमरी गाय देखकर चकित भी हुए और सटपटाए भी, परन्तु चारा क्या था? ठाकुर साहब ने पचास रुपये अपनी गिरह से निकाल, पचास गाँववालों के डाल, एक सौ पुजारी महाशय के हाथ में थमा दिये। बताशों का प्रसाद सभा में

बाँटा और फिर बीस रुपये और भी निकालकर सबको दिखाते हुए पुजारी को दे दिये और उदार भाव से कहा—

"पण्डितजी, यह लो बीस रुपये और पूजा-पाठ खूब अच्छी तरह करवाना, प्रायश्चित्त में कोई कसर न रह जाय।"

मसद्धी भी मनुष्य है

'गोरा-स्पेशल' सुरंग में से धड़धड़ाती, सीटियाँ मारती हुई निकली और समर-हिल स्टेशन पर आ रुकी। उसकी फक-फक सुन मसद्धी अँगीठी को पूरे जोर से हवा करने लगा। वे तीनों बाबू, जिनका वह नौकर था, अब दो-तीन मिनट में ही घर आ धमकेंगे और यदि आते ही उन्हें चाय न मिली तो नाक में दम कर देंगे। उनके सीढ़ियाँ चढ़ने या फाटक खोलने के ढंग से ही अब मसद्धी भाँप सकता था कि उनका पारा कैसा है। अगर वे थके-माँदे होते तो फाटक आहिस्ता से खुलता और उसकी चूल देर तक चरचराती रहती और वे जले-भुने होते तो चूल ऐसे चीख पड़ती मानो पीड़ा से कराह रही है।

शिमला की खुश्क सरदी के मारे उसकी उँगलियाँ शुष्क टहनियों की भाँति खुरदरी और सख्त हो चुकी थीं, हाथ फट चुके थे और पंखी सँभालना तक कठिन था। फूँकें बटोरते-बटोरते वह दम हार चुका था। उसने थकावट-भरी उबासी लेकर टाँगें पसार दीं। रसोईघर धुएँ से सट रहा था, उसकी आँखें लाल डोरों से भर आई थीं जिनमें यह धुआँ काँटों की तरह चुभ रहा था। बाहर हिमशिशिर वायु तुषारावृत गिरिशिखर पर रह-रहकर सिर पटक रही थी। शिमला में इस शरत् का पहला तुषारपात हुआ था और अब आकाश निरभ्र था। पाले की बिसायँध से रची-रचाई धुन्ध पहाड़ियों से निकलकर उपत्यकाओं में जा सिमटी थी। मोहिनी काटेज के अगवाड़े का विशाल मैदान फुट-फुट-भर बरफ़ से लदा हुआ था। उसके आर-पार के तेजफल के पेड़ सर्वत्र श्वेत हो रहे थे। इन सिहरते हुए

रुण्ड-मुण्ड पेड़ों से मसद्धी को भय लग रहा था। उन सबसे हटकर सेब का एक वृक्ष था जिसकी डाल-डाल पत्ती-पत्ती हिम के अवलेप में ढँकी हुई थी, टहनी-टहनी से बरफ के गाले चिपक रहे थे। मसद्धी के जी में आया कि हो-न-हो यह चाँदी का पेड़ है और उससे लगे रुपये तोड़कर वह भी सोने के लिए खाट, पहनने के लिए नरम मुलायम वस्त्र और खाने के लिए शिमले के लोअर बाजार में सजी चटकीली मिठाइयाँ खरीद सकता है।

अस्तप्राय सूर्य का मन्दप्रद दीप क्षितिज के झरोखे में टिमटिमा रहा था। उसकी ठिठुरती-सिहरती किरणें मसद्धी के समीप चूल्हे तक रेंग आई थीं। इन रिमझिम करती रश्मियों ने उसके किशोर चित्त को निहाल कर दिया और वह अनभिज्ञ स्निग्धता के लिए चसकने लगा।

इस घर में नाक में दम होने पर भी वह इन बाबुओं के प्रति किसी प्रकार की घृणा नहीं अनुभव करता था। सच्ची बात तो यह है कि न वह अपने-आपको और न ही कोई अन्य उसे इस प्रकार की मानव-प्रवृत्ति से सम्पन्न मानता था, यहाँ तक कि उसकी पहली मालकिन उसका होना-न-होना बराबर मानकर उसकी उपस्थिति में ही विवस्त्र स्नान करने लग जाती थी। हरेक मनुष्य, जिससे उसे पाला पड़ता, उसको अनुभवहीन ही मानता-जानता था। वह इन सब लोगों को एक अटल शक्ति के रूप में समझता था और इसी नाते ही उसका इन सबसे वास्ता पड़ता था। उसकी इन सबके प्रति वैसी ही भावहीन अनबन और प्रतिपक्षता थी जैसी सोते समय काटने वाले खटमलों और पिस्सुओं से। मसद्धी अँगीठी को तनिक और पास सरका और उकड़ूँ बैठकर आग तापने ही लगा था कि लकड़ी की सीढ़ियों पर भारी बूटों के धमाके, बरफ पर चलने की चर्राहट और साथ ही फाटक की चूल की चीख सुनाई पड़ी और वह चौकन्ना हो रहा। हुंकार पड़ने पर वह बाहर निकला और जेब से ताली निकालकर उसने दरवाजा खोल दिया।

बाबू शीतलप्रसाद ने पूछा, "चाय तैयार है मसद्धी के बच्चे?" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने मसद्धी के चूतड़ों पर हल्की-सी

लात लगाकर उसे रसोईघर की तरफ ठेलते हुए चेतावनी दी, "चुटकियों में लाओ।"

मसद्धी अत्यन्त तनदेही से आग तेज़ करने लगा—अपनी भुजाओं का शक्ति-भर जोर लगाकर। इतने में हाँक पड़ी, "कोई डाक आई है ओ मसद्धी?" "जी एक खत है," बुड़बुड़ाता हुआ वह कमरे में पहुँचा। वे तीनों झगड़ रहे थे कि पत्र मेरा होगा। बिजली का बिल देखकर उनका जी खट्टा हो गया।

"चाय नहीं लाए?" गुजरमल ने आँखें निकालीं। मसद्धी कहने ही वाला था कि तैयार कर रहा था, आपने बुला लिया, किन्तु बाबू के चढ़े हुए तेवर देखकर वह भीगी बिल्ली बना कमरे से बाहर चला आया। अभी उसने चौके में पैर धरे ही थे कि कृपाराम दियासलाई के लिए चीखा, जो मसद्धी ने झट हाजिर कर दी। डब्बी में सिर्फ दो सींकें देखकर उसका पारा चढ़ा, "दियासलाइयाँ तक हड़प कर जाते हो, सप्ताह-भर भी नहीं चलतीं।" उसने शीतलप्रसाद से सिगरेट लेकर सुलगाई। गुजरमल दूसरी सींक से कान खुजाने और दाँत कुरेदने लगा।

वे तीनों साधारण क्लर्क थे। 'सफेदपोश', 'पढ़े-लिखे' एवं 'समझदार' व्यक्ति होने पर भी निम्न-मध्यम वर्ग की जो मानसिक सीमाएँ होती हैं उनके बाहर झाँक सकना उनके बस का रोग नहीं था। वही ऊपर के वर्ग को नतमस्तक 'जी हुजूर' और निम्नस्तर के 'ऐरे-गैरे नत्थू-खैरों' को नाक-भौं चढ़ाकर बन्दर-भबकियाँ देना, उनका स्वभाव था। शीतलप्रसाद अधेड़ था; आँखें धँसी हुई, भवें घनी-घनी, आवाज भिंची हुई। वह अजीब प्रकार से ठण्डी-ठण्डी साँसें खींचता और भवों को सहलाता। उसकी डील मँझली और डौल इकहरा था। वह बहुत वर्षों से 'घरवाली' को घर से निकाल 'मेस' बनाकर रह रहा था। निठल्ला और कामचोर होने के फलस्वरूप उसे अठारहवर्षीय नौकरी में कोई तरक्की नहीं मिल पाई थी, युद्धकालीन धाँधली के बावजूद। उसने अपनी लम्बी टोपी पर लिख रखा था 'अठारह वर्षों से थर्ड ग्रेड क्लर्क, वेतन केवल ६४ रु० १५

आने।' टिकट का सोलहवाँ आना वह बीच में नहीं गिनता था। इसे पहनकर सारा दिन दफ्तरों में चक्कर काटता रहता था। उसके कपोल थैलियों की तरह लटक रहे थे और उन पर नीली नसों ने मीनाकारी कर रखी थी। गुजरमल का शरीर गठीला, सीना चौड़ा, बाल चिकने और घुँघराले थे। वह बड़ा खुशदिल और हाज़िर-जवाब था। इकहरी भवों के नीचे उसकी आँखें मुस्कराती रहती थीं। मूँछों के नीचे सफेद दाँत चमकते रहते। कृपाराम की शकल-सूरत कुछ ऐसी साधारण-सी थी कि उसे पहले कभी न देखा होने पर भी यों प्रतीत होता है कहीं-न-कहीं अवश्य देखा है। गुजरमल हरयानवी जाट था और कृपाराम लाहौरी लाला। परन्तु अब कुछ वर्षों की ही कच्ची नौकरी के पश्चात् दोनों मिलता-जुलता ही नहीं एक-सा 'स्वतन्त्र' सोच-विचार करने लग गए थे।

मसद्धी ने चौके में पाँव धरा ही था कि धोती के लिए पुकार पड़ी। उसने कमरे में जाकर गुजरमल के समीप ही अलगनी पर लटक रही धोती उतारकर उसके मत्थे मढ़ी और वापस आकर फिर चाय जुटाने में लग गया। इतने में शीतलप्रसाद ने स्नानगृह में गरम पानी रखने की आज्ञा दी। मसद्धी की विनती की—'ऐसे तो चाय को देर हो जायगी'—अनसुनी करते हुए उसने केतली में से पानी उँडेल लिया। उधर कृपाराम चिल्ल-पों मचाने लगा, "मेरे स्लीपर कहाँ छिपाए हैं?" साथ-साथ शीतलप्रसाद स्नानगृह से निकलते ही कड़कने लगा। जब मसद्धी कमरे में पहुँचा तो वह मोटी-मोटी भौं सिकोड़कर कचीची कसकर मुक्का भींचता हुआ उसे डाँटने लगा इतने तीव्र क्रोध से कि उसके शब्द उलझ रहे थे। अन्त में उसने मसद्धी को घूँसा दिखाया, "आध घण्टे में चाय नहीं दे सके?"

मसद्धी के मन में ये लानतें-दुतकारें दहकते हुए अंगारों-सी जलन उठातीं। उसे लगने लगता कि वह मनुष्यों की दुनिया से ही लात मार-कर बाहर कर दिया गया है और उसे यों अनुभव होता था कि वह

मसद्धी नहीं रहा वरन् कोई न्यूनतम वस्तु-मात्र है । केतली हलके-हलके फर्राटे भरने लगी थी, परन्तु वह अनमना-सा बैठा अस्पष्ट विचार सोचा किया । कई बार पुकारें पड़ने पर भी वह आलस से ही काम निपटाता रहा । कभी थूक लगाकर पिर्च-प्याले चमकाता, कभी चीनी से तिनके बीनता । आखिरकार जब गुजरमल ने आकर उसका कान ऐंठा तो उसने पत्तियाँ केतली में झोंककर चाय उनके आगे ला पटकी ।

कृपाराम ने चायदानी का ढकना उठाकर चाय सूँघी और नाक सिकोड़ी, "आज फिर चाय अच्छी नहीं बनी ।" मसद्धी ने हाथ की पीठ से, भीग रही नाक पोंछी । वह कहना चाहता था कि शीतल बाबू का हुक्म है चाय कम खर्च करूँ, किन्तु सबकी निकली हुई आँखें अपने ऊपर जमी देखकर उसका कण्ठ सूख गया । उसने एक ठण्डी उसाँस छोड़ी । उसकी आँखों में भयभीत उदासी तैरने लगी । वह आँखें बन्द करने की कोशिश करने लगा, परन्तु उसके दीदे इतने बड़े थे कि पपोटे उन्हें किसी तरह ढँक नहीं सकते थे और इसी खींचातानी में उसकी सूरत और भी रोनी बन जाती । चिल्ले के जाड़े के कारण उसका अंग-अंग सिहर रहा था । वे सब तो सिर से पाँव तक ऊनी वस्त्र चढ़ाये हुए थे और मसद्धी के तन पर जगह-जगह से मसकी हुई खद्दर की वासकट ही थी ।

चौके में पहुँचकर मसद्धी रसोई तपाने लगा । उसने चूल्हे पर सालन रखा ही था कि फिर आवाजों की बौछार आई, लेकिन उसका हिलने को जी न हुआ । इतने में ये आवाज़ें चीखें बन गईं और उसे भीतर जाना ही पड़ा ।

शीतलप्रसाद मूँगफली को छिलके समेत फाँक लेता था, उसे कुछ मिनट चबाने के बाद वह नीचे की ओर जोर से फूँकता, छिलके बाहर निकल जाते और गिरियाँ कण्ठ के नीचे चली जातीं । फलतः थोड़े समय में ही सारा फर्श मूँगफली के छिलकों के चूर्ण से सट जाता । गुजरमल चिल्लाया, "भुरकुस निकाल दूँगा, कमरा भली भाँति क्यों नहीं झाड़ते-बुहारते ?" वह मसद्धी को जी भरकर डाँट-डपट सुनाने लगा, जो थी तो

शीतलप्रसाद के लिए पर सुनाई मसद्धी को जा रही थी। बात काटने के लिए शीतल मछली-सी गोल आँखों के वृत्त चमकाकर, चितवन तीखी करके, ओठ लटका और दाँत निकाल झल्लाया, "अरे चार दिन में ही आध सेर चीनी हड़प कर ली ?" मसद्धी ने तीनों की ओर विनीत भाव से ताका और डरते-डरते मुँह-ही-मुँह में कहा, "मेरे लिए तो आप शक्कर लाये हुए हैं, इन इस्तेमाल की हुई पत्तियों से ही मैं शक्कर की चाय बनाता हूँ।"

मसद्धी ने पाँव उठाकर उन्हें दिखाए, पाले के मारे बिलकुल फट चुके थे, जले हुए कोयले की तरह वह राख-भरे और दरारदार थे। उसने पटसन के जूते के लिए आठ आने माँगते हुए विनय की, "बाबूजी, बहुत पाला है, मर जाऊँगा।" यह सुनकर शीतलप्रसाद ने ठहाका छोड़ा, "खबरदार! अभी ठहरकर मरना, कफन सस्ता हो ले।"

मसद्धी से यह सुनकर कि आटा खत्म होने को है, वे तीनों उस पर बरस पड़े। शीतलप्रसाद ने डाँटा, "कम खाया करो।" मसद्धी के स्पष्टीकरण पर कि दस दिन लाए हो चुके हैं, शीतलप्रसाद ने प्रश्न किया, "कितनी रोटियाँ खाया करते हो ?" मसद्धी ने डरते-डरते जवाब दिया, "कभी छः कभी सात।" "इतनी, देखूँ तो तुम्हारा पेट।" गुजरमल उसकी ओर लपका और मसद्धी सहमकर पीछे हट गया। "मैं तो दो जून सूखी रोटियाँ ही खाता हूँ," उसके मुँह से निकल गया, लेकिन "आप तो दूध, मक्खन, टोस्ट दर्जनों अन्य पदार्थ खाते हैं" के शब्द उसके कण्ठ में अटके ही रह गए।

दीया-बत्ती का समय हो चुका था; मसद्धी ने दीया जलाया। रसोईघर में बिजली नहीं थी। वायु की सीटियों और ठहाकों से उसे जान पड़ता था कि बरफ में लदी पहाड़ियों पर दैत्य क्रीड़ा कर रहे हैं। सामने जतोग़ की छावनी में चाँदमारी समाप्त हो चुकी थी, फिर भी उसकी ठाँय-ठाँय मसद्धी को अभी तक वृक्षों पर कोड़े मारती हुई अनुभव हो रही थी—वृक्ष जो भीग रहे अँधियारे में उसे अपने से ही नतमस्तक

लाचार चाकर प्रतीत हो रहे थे। शीत से ठिठुरते गीदड़ों की रेल की सुरंग में चीत्कार सुनाई पड़ रही थी। मसद्धी को बाबूगंज की सड़क के बिजली के लट्टू तक ठण्ड की कँपकँपी से थरथराते जान पड़ रहे थे। प्रचण्ड वायु खिड़कियाँ खटखटा रही थी और धुआँकश में से नीचे छपाके मार रही थी, जिससे दीपशिखा फड़फड़ा उठती, दीवारों पर अस्पष्ट परछाइयाँ दौड़ने लग जातीं और मसद्धी का जी और भी सहम जाता। भीगी लकड़ी, जो उसने बड़ी कठिनता से दहकाई होती, पुनः धुआँ छोड़ने लग जाती और उसकी किशोरावस्था की घनी पलकों से आँसू लटक आते। मसद्धी ने निश्चय किया कि इस बार वेतन लेकर अवश्य यह नौकरी तज देगा, परन्तु ये लोग तनख्वाह कहाँ एकमुश्त देते हैं, कुछ-न-कुछ अवश्य दबा रखते हैं; अब यह नित-नित की दाँताकिलकिल, यह दिन-प्रतिदिन का भला-बुरा और नहीं सुना जा सकता। उसे तारों की छाँह में ही काम-धन्धे में जुट जाना होता था और रात के ग्यारह बजे तक कहीं मरते-करते चौका-भाँडा समाप्त होता था। दिन-भर के कड़े श्रम से हड्डी चूर हो उठती और निद्रा उखड़ी-उखड़ी रहती। वह यह दुःस्वप्न देखता रहता कि एक मनुष्य-काय उल्लू नोकदार चोंच से उसकी खोपड़ी में ठोंगे मार रहा है अथवा रेलगाड़ी का इंजन समरहिल स्टेशन से रसोईघर में आ घुसा है और उसके सिर से पाँव तक ऊपर-नीचे चक्कर काट रहा है।

अभी मसद्धी यह कुछ सोच ही रहा था कि शीतलप्रसाद भली-बुरी सुनाता आया और उस पर बरस पड़ा। वह उसे कमरे में ले गया और जालीदार अलमारी की ओर संकेत करता हुआ मसद्धी पर लात जमाकर दहाड़ा, "आज फिर दूध चट कर गए कमजात।" अलमारी को ताला लग रहा था, फिर भी दूध उड़नछू हो रहा था और बालाई कड़ाही की तह से चिपक रही थी। वह मसद्धी को यह अपराध स्वीकार करवाने के लिए उसकी 'मरम्मत' करने लगा। घूँसा-लात, घूँसा-लात, घूँसा-लात और यह तब रुका जब मसद्धी का कचूमर

निकल गया, जब उसका बिलख-बिलखकर रोना और फूट-फूटकर कराहना सबके लिए असह्य हो गया।

मसद्दी ने इस छोटे-से जीवन में बहुत पीड़ा और यन्त्रणा सही थी। उसके पहले मालिक ने वह दाल, जो उससे पकाने में लग गई थी, जबरदस्ती जब उसे दण्डवश खिलाई थी तो वह दो दिन गरम रेत पर फेंकी हुई मछली की तरह पेट के दर्द से तड़पता रहा था। इस बार तो उसे लग रहा था कि उसकी हड्डी-हड्डी, बोटी-बोटी अलग हो रही है और स्नायु-स्नायु कट रहा है। यह सब देखकर उन तीनों के चित्त चहुँट उठे। क्रोध ठण्डा होने पर शीतलप्रसाद तो बहुत पानी-पानी हो गया। कृपाराम ने उसे धतकारा कि दूध तो वह छक जाया करता था, निष्प्रमाण ही इस बेबस लाचार पर इतना अत्याचार। अब उसे बताना ही पड़ा कि अलमारी की जाली के थोड़े से छिद्र उसने पेन्सिल से खोल रखे हैं जिनमें से कागज़ की सींक डालकर वह दूध चूस लिया करता था। कुछ देर तू-तुकार हुई, परन्तु भेद चौपट हो जाने पर शीतलप्रसाद और भी कच्चा पड़ गया। गुजरमल ने कहा कि ये गरीब लोग तो पशुमात्र भावहीन मिट्टी के घोंघे ही होते हैं। इन बेचारों को न्याय-अन्याय की कोई सूझ-बूझ नहीं होती। हम पढ़े-लिखे हैं हमें ही इनसे मनुष्यवत् बरताव करना चाहिए।

उन तीनों ने उसे प्यार-दिलासा दिया, पुचकारा-दुलारा, उसकी पीठ मांजी-थपकी तब कहीं मसद्दी का हूँकना-हुड़कना कुछ मन्द हुआ। कृपाराम ने उसे एक कमीज़ दी, गुजरमल ने पाजामा और शीतलप्रसाद ने जुर्राबें। सबने उसे विश्वास दिलाया कि न अब उसे ऊँचा बोल कहा जायगा और न ही उस पर हाथ उठाया जायगा। शीतलप्रसाद ने उसे आठ आने पटसन के जूते के लिए दिये और प्रस्ताव किया कि उसके वेतन में एक रुपया प्रतिमास की वृद्धि कर दी जाय जो मसद्दी की पीठ पर सम्मतिसूचक थपकियों के साथ स्वीकार हुआ।

मसद्दी भी सहानुभूति के इस अनुपम प्रदर्शन से गद्गद हो उठा।

शिमला आने के प्रथम बार उसे इतनी स्निग्धता और स्नेह प्राप्त हुआ था। न जानते हुए कि यह क्षणभंगुर है, शायद इसी कारण ही उसने अपने-आपको सँभाला, आँखें सुखाईं और एक नन्ही-मुन्ही मुसकान उसके ओठों पर खेलने लगी—मुस्कान जिसमें वेदना तो बहुत थी मगर क्रोध नहीं था। फटी हुई आस्तीन से उसने विस्मित अनमना आनन पोंछा। कृतज्ञ चितवन से कभी वह उन्हें निहारता और कभी नेत्र नीचे कर लेता। वे तीनों उसे प्यारते-दुलारते रहे और उसकी पीठ मींजते रहे। इतना स्नेह पाकर उससे न रहा गया और उसने भी आखिर अपने मन से द्वेषभाव धो दिया। "अब मैं भी प्यालियाँ-धुले पानी में चाय बनाकर देना बन्द कर दूँगा," मसद्दी के मुँह से आप-ही-आप निकल गया।

मूक नहीं यह पत्थर

ग्रीष्म ऋतु के चलचलाव के दिन थे; पतझड़ का आगमन था। दो ऋतुओं के बीच जो ठहराव का-सा समय आता है, उससे हर चीज़ सट रही थी। ढलती गरमियाँ, जब वर्षा की रिमझिम थम जाती है और आकाश शिशु के मन-सा निर्मल हो जाता है, जब दिन खुले-खुले और धूप मीठी-मीठी होती है, परन्तु साँझ-सवेरे छोटे हो रहे दिनों का बोझिलपन अवसादमय परछाइयाँ बिखेरता हुआ तबीयत को अनमना-सा बनाता जाता है; जब वसुन्धरा की पुष्प-जटित सेज की सजधज तो अभी वैसी ही होती है, किन्तु नजरहाई पतझड़, हर दीठ से एक-न-एक बूटा कुम्हला देती है। मन्दातिमन्द स्वर, चाहे वह झींगुरों, तिलचटों की चरहिट हो, चाहे नीड़ों को लौट रहे पक्षियों की फड़फड़ाहट, चाहे गिर रहे पत्तों की क्षणभंगुर सरसराहट, कभी-कभार यह ऐसा ऊधम मचा देती है कि कान चौंक उठते हैं। यही वह समय होता है जब हर चीज़ चुप तो होती है पर कहीं चुपचाप नहीं होता।

एक ऐसी ही संध्या थी। डूब रहा सूर्य हुन बरसा रहा था। दो पर्वतों के बीच से बहकर आ रही किरण-राशि मन में यह विश्वास उजागर कर रही थी कि यह उपत्यका ही एक विशाल स्वर्ण-नगर है। साथ-साथ फूलों की मनमोहन महक सीली धरती की भीनी बास से घुल-मिलकर वायु में मादक उन्माद बखेर रही थी। यही वह समय होता है जब मानव-हृदय भी आकाशचारी विहंग बनकर नये संसार खोजता है, जब उर की प्रत्येक धड़कन सृष्टि के कण-कण से एकसुर एकतान हो

जाती है, जब मन की मौजें, हल्की-फुल्की नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ बनकर डाल-डाल नृत्य करती हैं, अणु-अणु से कानाफूसी करती हैं। तब विधाता भी टहनियों की अनगिनत सारंगियों पर एक अगम्य राग छेड़ देता है। इस समय हर चीज उदास होती है परन्तु फिर भी कहीं उदासी नहीं होती।

शुक्ल पक्ष की एकादशी का चाँद दिन रहते ही निकल आया था। उसका शीतल फीकापन मेरे अनमनेपन को मन्द करने लगा। लम्बा पंथ गहते-गहते पाँव थक आए थे और शरीर बोझिल हो रहा था। एकाएक थकन से हड्डी-हड्डी चूर हो उठी। ज्यों-ज्यों राह कटती और पड़ाव समीप आता गया, त्यों-त्यों पाँव भारी और कदम बढ़ाना कठिनतर होता गया। ध्यान बटाने के लिए मैंने अपने साथी को जताया, "क्या सुहावना दृश्य है!" वह उसी प्रदेश का निवासी था और अपने भाड़े के घोड़े पर मेरा सामान लादे हुए था। मेरा सुझाव अनसुना करते हुए वह ऐसे झेंपा जैसे गणित की कोई अत्यन्त कठिन समस्या ही उस मूढ़ अशिक्षित के सम्मुख रख दी गई हो। उत्तर में उसने एक विशेष ढंग से अपने नेत्र मूँद लिए और मुँह बा लिया। मेरे खीज रहे मन में आया कि क्या ये लोग अपने देश की असीम सुषमा को कभी भी पहचान नहीं सकेंगे; क्या यह केवल सैकड़ों कोसों से आये सैलानियों का बहलाव-मात्र ही रहेगी?

हिम-वास के समुद्र-तल से दस हज़ार फुट ऊँचे मैदान से हम बलतस्तान की घाटी में उतर रहे थे। इस उपत्यका का छोर श्याक गाँव, अब आया ही चाहता था। भारत के स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले की यह बात है। स्वदेश से काले कोसों दूर श्रीनगर से भी सात दिन पैदल की दूरी पर, भारत की इस धुर उदीची सीमा पर कैसे अन्न-जल हुआ और कैसे यहाँ के डोगरा शासकों और फिरंगी चौकीदारों के कारण चला आना पड़ा, यह दुःख-भरी कहानी है। परन्तु सचमुच दिल हिला देने वाली कथा तो इन बलतस्तानी लोगों की है जहाँ अंगरेजी सभ्य

शासन के सौ वर्षों में भी इन्हें पशुओं से तनिक ऊँचा उठाने के लिए यहाँ दियासलाइयाँ और लोहे के चाकू तक मुश्किल से मिलते थे।

मेरे साथी का नाम राहूखेल था, परन्तु सब उसे 'पत्थर' के नाम से पुकारते थे क्योंकि महीन-महीन जनानी आवाज के कारण वह बोलने में लज्जा अनुभव करता था। मुझे स्मरण नहीं होता कि गत दो दिनों की सहयात्रा में उसके मुँह से एक बोल भी निकला हो। उसके ओठों पर मानों मोहर ही लग रही थी। जब कभी मैंने उससे कोई प्रश्न किया, उसकी राय पूछी अथवा मेरे एकपक्षीय वार्तालाप के बीच कभी हामी भरना आवश्यक हुआ तो वह अपने कुछ-कुछ कमजोर नेत्र मूँदकर मुँह बा लेता, कानों की लटकती लौ को पोले-पोले मसलने लग जाता और सिर नीचे झुका लेता। मन्द प्रकाश में कपड़े काढ़ने का काम करने के कारण उसकी आँखें अब केवल निकटदर्शी ही थीं। उसका शरीर गठीला था, चौड़ी छाती, घुँघराले किन्तु विरल बाल। आयु तेईस-चौबीस के लगभग। यद्यपि बाल अभी पके नहीं थे तथापि पकने को आए थे। अभी केवल ठुड्डी के बाल खिचड़ी हुए थे। मूँछों के नीचे मटमैले पीले दाँत भी पके हुए बालों का धोखा दे रहे थे। उसकी आकृति पर भूख नहीं अल्पाहार की स्पष्ट छाप थी। इसके होते हुए भी उसके शरीर में अभी यौवन का गठन और हट्टाकट्टापन था। उसका अटूट मौन कहावत ही बना हुआ लगता था। इस हेतु सब बटोही उससे छेड़छाड़ करते जाते पर वह किसी से खिन्न नहीं होता था। बच्चे 'न मुँह में दाँत, न पेट में आँत', चीखते उसके आगे-पीछे नाचने-कूदने लग जाते और वह बिना एक शब्द भी मुँह से निकाले उन्हें दुलारने लग जाता। सयाने भी राह चलते उसे छेड़ने के लिए रुक जाते और कभी-कभार तो हार-थककर उससे विनय करते कि 'बाबा तू जीता हम हारे, एक बोल तो बोल।' वह झेंपता-झिझकता कुछ ऐसी दुविधा में पड़ जाता कि बस अब उसके मुँह का ताला टूटा। इतने में अन्य मनुष्य उसकी घबराहट और हिचकिचाहट देख-देखकर हँसी रोक न सकते और वह बेचारा यदि बोलने

भी लगा था तो भी ओंठ सी लेता। मैंने एक से पूछा कि इस काठ-कठोर का विवाह कैसे हो सका। उसने मुझे बताया कि उसकी पत्नी इस मौन पर अति सन्तुष्ट है, क्योंकि मार-पीट के समय भी यह ज़बान नहीं हिलाता और वह कहा करती है कि औरों के घर तनिक अनबन हो तो सारा जग जान जाता है, उसकी खाल उधड़ जाय तो भी दीवार तक के कान खड़े नहीं होते।

गाँव अभी-अभी क्षण-भर के लिए दीख पड़ा या और पड़ाव समाप्त हुआ चाहता था। चुप-चुप पंथ नापने की थकन को कम करने के अभि-प्राय से मैं फिर पत्थर से कुछ उचारने के लिए अनुरोध करने लगा। अनेक जुगतें कीं, बार-बार छेड़ा, तब कहीं वह टस से मस हुआ। हिच-किचाता, अगर-मगर करता वह पूछने लगा, "बाबूजी, आपके देश में भी परबत होते हैं?" उसका स्वर सचमुच बहुत महीन गो स्पष्ट था जैसे नवप्रसूत मेमने ने प्रथम सुर निकाला हो। मैंने धैर्य से उत्तर दिया, भाई पर्वत-वर्वत तो काश्मीर-जम्मू तक ही खतम हो जाते हैं।" उसने तुरन्त मेरी बात काटी, "यह कभी हो सकता है, कहीं पहाड़ न हों! यहाँ ऊँचे-नीचे होते हैं, आपके यहाँ हमवार होते होंगे।"

अब हम घाटी में पहुँच चले थे। लम्बी होती परछाइयों के संकोच-रहित प्रसार ने वृक्षों से गिचपिच इस तलहटी की हर चीज को अपने भीतर समो लिया था। कहीं-कहीं बहुत ही दीर्घ देवदारु के फुनगों को सूर्य की तिरछी किरणें उजाल रही थीं। उपत्यका में गुम था परन्तु पर्वतों के ऊपर आकाश में, गेंदों की भाँति फुदकती बदलियाँ, इस दुबिधा में जान पड़ती थीं कि इस वर्ष के पहले तुषार का रजतकलश किस गिरि-शिखर पर चढ़ायें। एकादशी का चाँद, जो झुटपुटा हो जाने पर भी अभी ज्योतहीन था, किसी आदिम देवता का चक्षु मालूम हो रहा था। सामने उपत्यका का पहला छोर नज़र आ रहा था। उसके धुँधले-धुँधले आकार से वह बलतस्तान की धान-दाल का मोटी रोटी सरीखा अनुभव हो रहा था।

अगला मोड़ मुड़ते ही एक पैशाचिक कोलाहल से हम चौंक उठे। घोड़ा भी पल-भर के लिए दबका और खुर भूमि में गाड़कर अड़ गया। पत्थर लगाम पकड़कर उसे कदम-कदम चलने पर तत्पर करने लगा।

हम बलतस्तान की उपत्यका के दामन में पहुँच चुके थे। हमारे सम्मुख श्याक का नाला गरज रहा था। दो-तीन हज़ार फुट की ऊँचाई से एकदम लपक आने से इनमें बिजली की कड़क भर आई थी। उसे देखकर यह धोखा हो रहा था कि अगणित घोड़े पूरी शक्ति से दौड़ लगा रहे हों—इठलाते, कूदते, हिनहिनाते, तूफान उठाते, या लाखों पागल कुत्ते हवा पर मुँह फाड़-फाड़ भूँक रहे हों, अथवा असंख्य धामिल सीटियाँ मारते हुए एक साथ उड़े जा रहे हों। नदी के तट पर तीन-चार दर्जन घोड़े धारा को एक साथ पार करने के लिए रस्सों में घिरे शक्ति-भर हिनहिना रहे थे। वह हिनहिनाहट बाबा आदम के समय के किसी भीमकाय दरिन्दे की चिग्घाड़-सी कर्कश थी और नाले की गरजन से मिलकर विचित्र सा कराल हँगामा बरपा कर रही थी।

पास ही एक कुण्ड था जिसके किनारे घुन-मारा काई-खाया अखरोट का तना पड़ा हुआ था। मैं इस पर बैठ गया और पत्थर अपना घोड़ा अन्य घोड़ों में सम्मिलित करने के लिए आगे चला गया। इस कुण्ड में किसी सोते का मुहाना दीख नहीं रहा था। तह में से ही कहीं पानी फूट रहा था। यहाँ पहाड़ सुरमे का था। पानी साफ़ होने के बावजूद मट-मैला लग रहा था और स्वाद में कसैला था। सात हज़ार फुट की ऊँचाई पर रहने वाले चमगादड़ों के समान फूले-फूले, नीली धारियों वाले मेंढक जिनकी आँखों में जुगनुओं-सी जोत होती है, मेरे पाँव में फुदकने लगे। कुण्ड के तल से नर मादा सिर उभारकर उछलने लग जाते, सारा कुण्ड फूलों के हारों के समान उनके अण्डों से सट रहा था और वह जोड़ा एक साथ उन्हीं अण्ड-मालाओं में अदृश्य हो जाता था। शेष तीनों ओर पहाड़ था। वहाँ ऊँचे-ऊँचे पौदों और बूटों में तीतरों, अबाबिलों, गरुड़ों, बटेरों के जोड़े क्रीड़ा कर रहे थे। रुक-रुककर उनके परों की फड़फड़ाहट और

एक मस्ताना चहक सुनाई दे रही थी। धरती से कसैली-कसैली विषयासक्त बास उठ रही थी। गगनचुम्बित पहाड़ों के चरणों में पड़ी हुई यह तलहटी साल का अधिकतर भाग धूप से अपरिचित रहती। सुरमे के पहाड़ की चमकती हुई मिट्टी सदा तर और भाँति-भाँति की जड़ी-बूटियों की गन्ध से रची रहती। यहाँ वायु भी कुछ-कुछ वेगवान् थी। जो हवा परे पच्छिम की ओर प्रत्येक वस्तु को हलके-हलके सहलाती थपकियाँ-लोरियाँ देती-सी लग रही थी यह यहाँ तंग तलहटी में बच्चों की-सी अल्हड़ बनकर पेड़ों में नाच-कूद और सीटियाँ मार रही थी। कभी-कभी ये थपाके नीचे को हो लेते और मेरी पशमीने की कमीज हवा से भरकर पाल के समान फड़फड़ाने लग जाती। हवा में झूमकर पानी की मौजें इस वेग से तीर पर लपकतीं मानो मुर्गाबियों के झुण्ड लहरा रहे हों, टहनियाँ लपलपाने लग जातीं और उनमें विश्राम कर रहीं टिटिहिरियाँ और फुदकियाँ चिड़चिड़ अलाप देतीं। सन्ध्या भीगती जा रही थी। कहीं-कहीं तुङ्ग देवदारों के सूर्य की अन्तिम किरणों से उज्ज्वलित फुनंग, सुनहले तारकों की राह ताक रहे बालकों के आशावान् मुखड़ों सदृश अनुभव हो रहे थे।

अकस्मात् एक भयंकर दहाड़ से मेरा रोम-रोम सिहर उठा। नाले की गरजन और गोड़ों की हुँकार से कान इस समय तक अभ्यस्त हो चुके थे, परन्तु यह कोलाहल तो कुछ ऐसा था जैसे सैकड़ों भूकम्पों के धमाके एकस्वर हो गये हों या कोटि-कोटि नगाड़ों पर एक साथ चोब पड़ रही हो अथवा अनगिनत वज्र एकबारगी कड़कने लग जायँ। मैं नीचे नदी-तट पर पहुँचा जहाँ घोड़े एकत्र थे। घोड़ों के इर्दगिर्द एक बहुत लम्बे रस्से का घेरा किया हुआ था। इन रस्सों के सिरे नदी पार लोग पकड़े हुए थे और उन्हें खेंचकर घोड़ों को स्रोत में घसीट रहे थे। इधर खड़े व्यक्ति घोड़ों पर छड़ियाँ बरसा रहे थे। डंडे जिसमें कुछ लोहा जड़े थे एक-पर-एक घोड़ों की पीठ गरमा रहे थे। घोड़े इतने भयभीत थे कि अगले दोनों पैर हवा में नचाकर घेरे में कुलाँचें मारते हुए एक-दूसरे

से टकराकर रह जाते थे। पानी के इस उछलते प्रवाह से वे इस प्रकार डर-सहम रहे थे मानो वह नदी नहीं वरन् आदिम-कालीन महाकाय मगर है और उनकी हड्डी-हड्डी चबा जायगा। 'शेबारो-जोर-विलो' की आवाज़ों के साथ पुनः-पुनः, रस्सों के झटके, डंडे-पर-डंडा, अरुक 'चल-बे-चल' की आवाज़ें, हर जीव को जीवन से जो प्यार होता है वह सब इस पर भारी था। यदि उधर रस्से झटकते-झटकते छक्के छूट गये तो इधर चीखते-पीटते दम बोल रहा था, परन्तु घोड़े अयाल झटककर रह जाते और एक ही साथ इतनी तीव्रता से दयावाचक चिंघाड़ छोड़ देते कि पक्षी भी नीड़ों से निकलकर काँय-काँय करते हुए उन पर मँड-राने लग गये थे। किन्तु कोई चारा नहीं था। चील के लम्बे तने पर से मनुष्य ही कठिनता से नदी पार होते थे। घोड़ों को परले किनारे जाने के लिए जल-प्रवाह में से ही गुज़रना था।

मैं वहाँ अधिक काल खड़ा न रह सका। इस दृश्य से उच्छ्र तो क्या मेरी आत्मा ही उबल पड़ रही थी। चील के तने पर क़दम-क़दम रखता झूलता हुआ मैं नदी के पार पहुँचा और अपने सामान के समीप जा खड़ा हुआ। पत्थर भी रस्सा खींचने से थका-हारा पसीने में लथपथ वहाँ आ गया। इतने में घोड़ों के पैर उखड़ने लगे और वे नदी में कूदने लगे।

दीया-बत्ती का समय हो चला था। गाँव से एक स्त्री लटकती चाल से हमारी तरफ आ रही थी, दाँई बाहु में बच्चा झुलाती और बाँएँ हाथ से उछलती हुई छातियाँ सँभालती। केवल निकटदर्शी होने के कारण पत्थर को अपनी पत्नी का अनुभव तब हुआ जब वह बिलकुल निकट आ-कर अपने पति के पास खड़ी हो गई। बच्चा लपककर पत्थर की गोद में चला गया। उस स्त्री के गाल गुल्हैड़ के फूलों के समान जगमगा रहे थे, छोटी डील वाली सुडौल काया, सुथरी-साफ कंघी की हुई चोटी, नया धुला, अगरचे घिसा हुआ रुमाल केशराशि पर बँधा हुआ, बड़ी-बड़ी लाज-वंत आँखों में एक उज्ज्वल जोत उसके आनन को निहाल और निखार रही थी। उसने पल-भर के लिए तीखी चितवन मेरी ओर छिपे-छिपे

फेरी और झट ही लज्जा से नयन चुराकर उन्हें पलकों से ढँक लिया। उसके बंद-बंद में चुस्ती और यौवन था। बिना बटन कुरते में से दो बड़े-बड़े सर्द उभर रहे थे। पल-भर के लिए मेरी दृष्टि उनकी भूरी बुटनी पर पड़ी और फिर उसके मुखड़े पर जो कुछ ऐसा मनभावना था कि क्षण-दो-क्षण के लिए नजर टँकी-की-टँकी रह गई। ढकी आँखों ही गहरे-गहरे श्वास लेने से यूँ लगता था कि वह अपने मर्द को मूँदे नेत्र ही हजारों आदमियों में से पहचान सकती है—उसके जिस्म और कपड़ों की गन्ध ही से। पत्थर जो मुँह से एक पुचकार भी निकाले बिना गूँ-गाँ हूँ-हाँ से ही शिशु को प्यार-दुलार रहा था, उसे बाहों से उठाकर आगे करता हुआ मिमियाया 'दे बाबू को मिट्ठी'। बालक अपनी नीली-नीली धुली-धुलाई आँखों से मेरा निरीक्षण करने लगा। मैं बच्चों को चूमने से सदा कतराता हूँ क्योंकि उनकी नाक नित्य भीगी रहती है, परन्तु मेरे अपने-आपको सम्हालने के पूर्व ही उसने एक चुम्मा मेरे गाल पर जड़ दिया था। मैंने पत्थर की पत्नी से कहा—तुम्हारा पति है तो खरा हीरा किन्तु एक कज है जो मुँह में घुघनियाँ भरे रहता है, कोई औषधि खिलाओ जिससे इसकी जिह्वा में खुजली होने लगे। नीचे नयन ही लजीली मुसकान में उसके ओठों के बिम्बपल्लव खिल उठे। सचमुच मनुष्य कितनी सरलता से आनन्द प्राप्त कर सकता है। इन दोनों का जीवन अवश्य सुखपूर्ण है। भेड़ का एक बच्चा पत्थर की पत्नी के पीछे-पीछे हमारे पास आ गया था और पत्थर के साथ अपने नन्हे-नन्हे सींग रगड़ने लगा था, 'क्यों भेड़ू बहादुर, हम पर ही सींग,चल, हत्त खट खटा' उसकी पत्नी ने उसे परे ढकेला।

सहसा पत्थर के लिए घबराई हुई हुंकारें पड़ने लगीं। पाली की उछलती धाराओं के वेग से उसका घोड़ा रस्से से छूट गया था और अब लकड़ी के कुन्दे के तुल्य जल-प्रवाह पर उछल रहा था। पत्थर और उसके कुछ साथियों ने दई-दई करके उसे बाहर निकाला और बालू पर लिटा दिया। घोड़े का रंग चितकबरा था लेकिन अब उस पर रक्त

के प्रलेप से वह घोड़ा नहीं, कोई और ही अप्राकृतिक पशु लग रहा था। चट्टान से टकरा जाने से उसका पेट फट गया था। उसकी चौड़ी छाती अब और भी बड़ी लग रही थी। पतली-पतली टाँगें कुछ और भी पतली होकर इस प्रकार हिल रही थीं मानो भूकम्प हो रहा है। देखते-देखते घोड़ा ठंडा हो गया। पत्थर और उसकी पत्नी विषाद से बिलबिला उठे, बिलख-बिलखकर फूट-फूटकर रोने लगे और घोड़े को छू-छूकर विलाप करने लगे।

इस गाँव की एकमात्र सराय 'समरकन्द होटल' में जब मैं पहुँचा तो रात हो चुकी थी परन्तु गाँव अथवा सराय में कहीं भी दीपक दीख नहीं रहे थे। तेल अलभ्य था। पशुओं की भाँति युगयुगान्तर के अभ्यास से वे भी अब अन्धकार में देख सकने की योग्यता से सम्पन्न थे। एकादशी का चाँद पूरी तरह उज्ज्वल नहीं हुआ था। पत्थर का जो नातेदार मेरा सामान लिये हुए था आकाश की ओर देखता हुआ बोला—यह जो दिन रहते ही चाँद निकल आता है इसका अभिप्राय है इस बार हिमपात असाधारण होगा। काठ के बने झोंपड़े रात के अँधकार में वेष्ठित होकर स्थूलकाय हो रहे थे। गाँव के चटियल स्थल के इर्द-गिर्द जो छोटे-छोटे घरौंदे ठस-ठसकर खड़े थे उससे यह स्थान कीच में बहुत ही बड़ी एड़ी की धँसन जान पड़ रहा था। कहीं से सानी खाती गायों की धीमी-सी डकार सुनाई पड़ती, कहीं से धागा बटने की सुर या उखली में कुछ कूटने की खड़-खड़। कहीं समीप से ही एक रसीला गीत मन-लुभावने माधुर्य और एक विशेष गत से थिरक उठता। उसमें हर्ष और विषाद उसी अनुपात से घुलेमिले होते जो प्रकाश और ताप का दीपशिखा में होता है। एकाएकी मनुष्य-जीवन के ये विभिन्न चिह्न, मले जा रहे घोड़ों के दीर्घ श्वासों में गुमसुम हो जाते मानो उन्हें भी अपने देश की स्मृति सता रही है। पतझड़ की रात अपना जादू फूँकने लगी थी। मेरा हृदय अस्पष्ट अनुभवों के बोझ से धड़क रहा था। समग्र संसृति, प्रत्येक जीव-जन्तु के प्रति स्नेह और सहानुभूति का इसमें उद्बोधन हो

रहा था : जीवन के मद्धिम-मद्धिम दिये, कुछ बुझ चले, कुछ नये जले मानव दीपक, इनके सामीप्य की स्निग्धता से मेरा मन निहाल हो उठा और यह आशा मेरे उर में रह-रहकर करवटें लेने लगी कि ये बिन तेल टिमटिमाते दीप बिजली के जगमगाते लट्टू नहीं तो घी के उज्ज्वल चिराग ही बन जायँ ।

इस सराय और गाँव की अधिकतर उर्वरा भूमि का स्वामी क्रान्ति के पश्चात् समरकन्द से भागकर आया हुआ एक रूसी था । उसने यहाँ ही विवाह कर लिया था । उसकी मृत्यु के पीछे उसकी पत्नी इस जमींदारी और होटल की देखरेख कर रही थी । बारीक-बारीक झुर्रियों भरी मोर के अण्डे-सी उसकी आकृति थी । अभी भी उसकी तकन में एक अश्लील खिचाव था । काली अति काली आँखों के कारण उसकी भवें कम घनी लगती थीं । यह भवें उठी-उठी सी थीं जैसे अब भी उसे किसी रुचिकर घटना की प्रतीक्षा है । होठों के कोनों में सिमटी मुस्कान मुख पर फैल जाने के लिए हर समय उत्सुक थी । इसके रहते हुए भी इतना विरक्तिकारक आनन मैंने कदाचित् ही देखा हो ।

लातों और हाथों के पूरे-पूरे प्रयोग से पाषाणों पर अटके फटे-हाल किवाड़ को खोलकर उसने फर्श पर झाड़ू के दो-चार हाथ मारे और समरकन्द होटल का सर्वोत्तम कमरा मुझे निवेदन कर दिया । मैंने टार्च जलाया और कमरे के आरपार नजर दौड़ाई । काली छत की कोयलों-सी छतगीरों से कीच के रंग का कपड़े का पंखा लटक रहा था । तिड़कनों की आड़ी-तिरछी रेखाओं से सज्जित खिड़की-रहित, वातायनहीन दीवालों से गीली मशक सी दुर्गन्ध छूट रही थी । परदार चिउँटियाँ और अंजनहारियाँ इतना उपद्रव मचा रही थीं कि क्या मजाल अधिक देर आँखें खुली रह जायँ । उसने झाड़ू से इन मक्खों से बड़े पतंगों पर झपटते हुए एहसान फरमाया 'मैं अभी इन कमजातों की खबर लिये देती हूँ सिर्फ एक आना और लगेगा ।'

कमरे में तो क्या ठहरना था, बस आरामकुरसी जिसकी बेंत और

लड़की समवर्ण हो चुकी थी मुशकिल से बाहर घसीट सका और बारजे में जहाँ कुछेक बलतसतानी बैठे हुए थे आ बैठा। उन सबने मुँह मेरी तरफ़ फेर लिया। होटल की मालकिन ने एक बूढ़े से बलती भाषा में कुछ कहा और वह पंखा झलकर मेरे कमरे से पतंगे बाहर निकालने लगा। उसने चार पैसे का पानी एक छोटे-से गिलास में मुझे दिया। सुरमें का पहाड़ होने के कारण यहाँ पानी कसैला था और साफ पानी सात मील से लाना पड़ता था। वह मेरे सम्मुख लकड़ी की चौकी पर आ बैठी। मेरे दाएँ एक बूढ़ा, एक स्त्री और उस पर झुकी हुई छः सात वर्षीय कन्या थी जो दीवाल के साथ ढासना लगाये गोबरलिपी भूमि पर बैठे थे, बाएँ चौदह-पन्द्रह वर्ष की एक लड़की थी जिसकी लाल-लाल पिलपिले टमाटरों तुल्य, आँखें बिलकुल बन्द थीं। छोटी लड़की ने स्त्री के घुटनों से सिर उठाकर मुझे निहारा। उसके नेत्रों में यह आशा पनप उठी कि हो-न-हो आज उसे नई बातें और नई कहानियाँ सुनने का अवसर मिले और उन बातों से जो नित-नित सुनकर उसके कान पक गए थे उद्धार हो जाय। उस लड़की की बाहें कटी हुई टहनियों के समान सूखी-साखी थीं, होंठ ऐंठे हुए, काली-काली आँखें कुछ ऐसी जैसे ताप के मारे जल रही हों। दीनता में अवलेपित उसका मुखड़ा वानर-मुख की भाँति झुर्रियों से सटा हुआ था। उसके साथ की स्त्री लम्बे डील और पतले डौल की थी, चेहरा लम्बूतरा होता तो अवश्य फबता परन्तु चिपटा था। आयु बीस-बाइस, फिर भी छातियाँ मुरझाई पंखड़ियों के तुल्य शुष्क शोषित। कपोल पर जलती हुई झांइयाँ जैसे दागी सेब के धब्बे हों। नयनों में धीमा-सा प्रकाशबिन्दु जैसा मोमबत्ती बुझ जाने पर धागे पर छन-भर के लिए रह जाता है। उसने होंठ लटकाकर मुझसे एक सिगरेट के लिए प्रार्थना की और सबकी आसभरी आँखें मेरी ओर उठ गई। होटल की मालकिन ने हुक्का गुड़गुड़ाना आरम्भ कर दिया था और धुएँ में तम्बाकू से कहीं अधिक मेंगनों के चूर्ण की गन्ध हो रही थी। मैंने सिगरेट की डिब्बी निकालकर सबमें बाँटने के लिए उसको

दे दी। उसने डिब्बी में से एक सिगरेट निकालकर चार टुकड़े करके उनमें बाँट दिए और डिब्बी जब्त कर ली।

आकाश में चमक आये सितारे शिकारी कुत्तों के जगर-मगर कर रहे दीदे जान पड़ते थे। धीमी-धीमी चाँदनी में सब आकार फीके-फाके थे। केवल हिन्दुकुश गिरिमाला विशालतर और उच्चतर दीख रही थी। होटल-मालकिन ने उस ओर संकेत करते हुए प्रश्न किया 'सुना है हमारे समरकन्द में अमृतसर-लाहौर ऐसे बड़े-बड़े नगर बन गये हैं, गाँव-गाँव बिजली, तार, रेलें, पहाड़ों तक में हर साल आप-ही-आप उगने वाला ईख, गेहूँ और-तो-और वह ऊन तक अब कपास तुल्य उगा लेते हैं।' उसने 'हमारा समरकन्द' यूँ कहा जैसे अब भी उसका पति वहाँ का शासक है। उस प्रदेश के सम्बन्ध में मैं उसे कोई जानकारी न दे सका।

छोटी कन्या के सिवाय सब सिगरेट के कश लगा रहे थे। मेरी दृष्टि बुड्ढे पर पड़ी और मैं धक्-सा रह गया। वह सिगरेट का टोटा मुट्ठी में पकड़कर पी रहा था और अँगारा हाथ के भीतर था फिर भी उसे अनुभव नहीं हो रहा था। हो-न-हो कोढ़ से उसकी त्वचा की स्नायु ही मर चुकी थी। बिना प्रेरणा ही बुढ़िया ने गिला करना आरम्भ किया 'यह बुड्ढे घाघ किसी काम योग्य नहीं। कम-से-कम तीन सौ मन दाना इन्होंने करजा देना है तो भी इनके पेट भरे जा रही हूँ। केवल मई-जून में जब गरमी पड़ती है तो मुसाफिरों को पँखे झलने का काम होता है तब भी यह सो जाते हैं और इनके आसपास शक्कर बिखेरनी पड़ती है ताकि चिउँटियाँ इन्हें ऊँघने न दें।' यह कहते-कहते उसने अकारण ही अपने नकली दाँत बाहर निकाल लिये और दाँतहीन वृद्ध की नजर उन पर जमी रही। उसने शिकायतों का दफ्तर ही खोल दिया था। कैसे किसान और हलवाहे खुदा का खौफ छोड़ उस सीधी साधी, बेबस विधवा को असल तो क्या अब सूद भी पूरा-पूरा नहीं चुका रहे उनकी कन्याओं को यहाँ न रखें तो क्या करें? उसने मुझे सूजी

आँखों वाली लड़की के पिता को जो कहीं परदेश मजदूरी करने गया हुआ था, दवाई-दारू के लिए पत्र लिखने को कहा। मैंने उसके पिलपिले पपोटे उठाकर नयनों में बैट्री का प्रकाश डाला और यह जानकर मेरा जी बैठ गया कि उसके एक नेत्र की जोत ही ठण्डी हो चुकी थी।

कमरे से फतिंगे उड़ाकर दूसरा बूढ़ा भी हमारे समीप आ बैठा था। उसका चालीस-पैंतालीस ग्रीष्म-शरत् की छाप वाला चेहरा पुराने सूखे हुए देशी जूते का-सा था। वह दाईं मूँछ को ताव दिये जा रहा था। यह उसका स्वभाव-सा लगता था जिससे उसकी दाईं मूँछ बाईं से विरली हो रही थी। दाईं आँख भी जो दबी-दबी-सी थी अपेक्षाकृत लघु दीख पड़ती थी। उसका बायाँ डेला भीगा-भीगा-सा था मानो तेल से निकाली हुई अचारी आम की फाँक है। प्रथम दृष्टि में भुलावा हुआ कि वह अन्धा है। उसका मुँह झुरियों का समूह-मात्र था। जब वह बिना हाथ का प्रयोग किए सिर झटक, हिनहिना कर नाक सुनकता तो उसकी दबी हुई आँख किसी अनपढ़ के अँगूठे का चिह्न बन जाती। उस वृद्ध ने ओंठ लटका लिए मानो अत्यन्त असन्तुष्ट है और मुझे पूछने लगा, 'बाबू, सच-मुच पंखे बिजली से भी चलते हैं वह यह समझ सकता था कि बिजली से लट्टू प्रकाशित हो जायें क्योंकि तार में तेल के जाने के लिए छिद्र हो सकता है किन्तु यह पंखोंवाली बात वह नहीं ग्रहण कर पाया था। एक व्यक्ति जो स्याक के नाले को बिजली के लिए मापने आया था उन्हें उड़ती सुना गया था कि बिजली से टाँगें इतनी लम्बी हो जाती हैं कि दो-तीन सौ कोस तो यूँही घड़ी-भर में पार हो जाते हैं, स्वर इतना तीक्ष्ण कि पलभर में विलायत से बात कर लो, कान इतने चौकन्ने कि घर बैठे-बैठाये संसार-भर के समाचार सुन लो, भुजाएँ इतनी शक्तिवान् कि पहाड़-के-पहाड़ डोला दो। परन्तु उन्हें समझा सकना तो कहाँ, मैं स्वयं इन बहकी-बहकी बातों से कोई अर्थ न निकाल सका।

जो फरमाईशें भारत के प्रत्येक होटल में हुआ करती हैं, वह होने लगीं। जब बुढ़िया ने मेरी मुद्रा में तिरस्कार भाँपा तो झट उपदेश दिया

कि यदि जेब या रक्त गरम हो तो थोड़ा सा यह रोग सुख की वस्तु है। उसे अनसुना करता हुआ मैं कमरे में आ लेटा।

चन्द्रमा कान्तिमान हो चुका था। नक्षत्र चमक उठे था। परन्तु मेरे हृदय के सब दीप बुझे बुझे थे। ऐसा लगता था कि किसी ने चीरकर उसमें वेदना और शोक का संसार बसा दिया है। मनुष्य के सिवाय सृष्टि का कण-कण कांति और प्रभा से झलमल कर रहा था, मानव के अतिरिक्त प्रत्येक पदार्थ जीवन से भरपूर था। धरती के दीपक बुझे हुए थे। आकाश में स्वर्ण कंडीलें झलमला रही थीं। शैया पर टिके-टिके मैं सोचा किया, सोचा किया। निंदासी थकन बिसर गई। एक नयी अज्ञात पीड़ा निढाल करने, रग-रग बजाने और स्नायु-स्नायु को फिरकी की भाँति नचाने लगी।

मुँह अँधेरे पौ फटने से पूर्व ओस-लदी हरियाली पगडंडियों में पथ खोजता मैं सकदूं को हो लिया। रात ही पत्थर मुझे कह गया था कि वह और उसका भाई स्वयं बोझ उठाकर ले जायँगे और मैं जिस समय चाहूँ चल पड़ूँ। चाँदनी बुझ चुकी थी। मन्द शुक्र के तारे का हिमवत् सुरमईपन गजरदम के कँपकँपाते सन्नाटे में भूतभवन समान भय उत्पन्न कर रहा था। धीरे-धीरे प्रातःकाल का प्रकाश फैला। चरागाहों पर से परदे उठने लगे। वायु ऐसी धुली-धुलाई थी कि तबीयत निखर गई। पंछी भी जाग पड़े थे और गेंदों के समान डाल-डाल फुदक रहे थे। झरनों की अनथक गति से बजने वाले प्राकृतिक वाद्य पक्षियों की चहक से समस्वर होकर मन में विचित्र प्रकार की मस्ती उत्पन्न करने लगे। दिगंत तक खेतों का प्रसार चला गया था। उनमें कहीं-कहीं पेड़ों के झुरमुट आ जाते, कहीं दर्जन-दो दर्जन घरौंदा की बस्ती। पूर्व के पर्वतों की ओट से बालसूर्य्य ने शीश ऊँचा किया और चीड़ के वृक्ष अप्सराओं की भाँति छमाछम करने लगे। हवा ठहाके मार रही थी। एक सौंधी-सौंधी महक सब ओर बसी हुई थी। फसलें सिर हिला रही थीं जैसे किसी मधुर राग से झूम रही हों। ऐसे समय में तीव्रगमन का विचार तक

असह्य था।

लगभग दस बजे मैं सकर्दू पहुँचा। श्रीनगर के लिए खच्चर का प्रबन्ध कर, मीठी-मीठी धूप में रेस्ट हाउस के एक पेड़ से टेक लगाकर बैठा रहा। आँखें मूँदकर सूर्य्य के आगे बन्द-बन्द ढीला छोड़ देने में सरूर-सा अनुभव हो रहा था। सिन्धु नद बलतस्तान की इस उपत्यका के एक छोर से निर्गत हो दूसरे छोर में अन्तर्धान हो रहा था। मानसरोवर वहाँ से बहुत अधिक दूर न होने पर भी दरियों का प्रसार कुछ कम न था। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत थे और कहीं भी दरिया के आने-जाने की दरारें नजर नहीं आ रही थीं। रेस्ट हाउस की बगल में एक पुराना टूटा-फूटा शिवजी का मन्दिर था जो पलाश के पेड़ों में छुप-सा रहा था। मन्दिर के दाएँ बाएँ छोटे-छोटे चौकोर कुण्ड थे जिनमें निर्मल पानी झिल-मिल कर रहा था। बलस्तान की जनता की आत्मा भी इस पानी से कम पवित्र न थी। ठीक यहाँ ही सिन्धु नद के तट पर संस्कृत पुष्पित-पल्लवित हुई थी। इन लोगों ने ही कभी महान् बौद्ध सभ्यता का निर्माण किया था जिसके विशाल खण्डहर डरास और जोजीला से मैं देखकर आ रहा था। यह महान् जनता कैसे इतनी पिछड़ी, मानव-सभ्यता का लेशमात्र चिह्न तक खोकर आदिम दासता में कैसे आ गिरी और कैसे फिर ऊँचे उठ सकेगी, यह मैं कुछ न समझ सका। यहाँ से सौ गज़ की दूरी पर सकर्दू की बस्ती थी। उसकी पीठ पर काले पत्थर से बना मध्यकालीन शाहों का दुर्ग सवार था। यहाँ से उपत्यका का समग्र फैलाव और सिन्धु-नद का पूरा बहाव दीख रहा था। बस्ती के नीचे दरिया पर पुल था और सामने दो हज़ार फुट ऊँची और सात मील लम्बी सकर्दू की प्रसिद्ध लम्बाकार चट्टान, इस शाद्वल रम्य-भूमि के समस्त विस्तार में रंग-रंग के खेत लहलहा रहे थे, भाँति भाँति के पेड़ झूम रहे थे, छोटी-छोटी नदियाँ खेलती, फुदकती, इठलाती-गाती सिन्धु की अंकबार की ओर बढ़ी जा रही थीं। कशमीर की निशानी चनार का एक ही वृक्ष था जो पुलपार शाहकालीन इमामबाड़ा में स्थित डोगरा पुलिस चौकी के सम्मुख खड़ा था।

ग्यारह बजे के करीब पत्थर भी वहाँ आ पहुँचा। बलतस्तान की शाद्वलता और तरावट के कारण मैं ऐनक का इस्तेमाल कम कर रहा था और उसे पत्थर को देने का मैंने वचन दिया था। ऐनक को नाक पर ऊँचे-नीचे करके उसने ठीक बैठाया और खुशी में फूले अंग न समाया। वह चौफेर घूम-घूम झूम-झूमकर देखने लगा मानो वह किसी और ही लोक में आ टपका है।

बदलियाँ उजले-उजले हँसों के सदृश आकाश में उड़ रही थीं। दिनकर की किरणें वृक्षों की ओसजटित पत्तियों में नृत्य कर रही थीं, कभी इस पत्ती को छुपा देतीं कभी उसको उजालतीं, कभी सबको जगमगा देतीं। पत्तों से छन-छनकर आ रही किरणें, चमचमाते स्वर्णकणों की यह लीला स्वप्निल लोरियाँ-सी दे रही थीं। सुपनों की खुमारी रग-रग में बसी जा रही थी। ओस के बिन्दु-बिन्दु में धनुष का रंगीन तमाशा हो रहा था। एक-एक चीज सतरंगे मोतियों की झालर से ढंक रही थी। समीप ही ओस लदा सूरजमुखी फूल एक बहुत बड़े हीरे के तुल्य चमक रहा था। घाम की स्निग्धता में मस्ती थी, आलस्य था। समस्त उपत्यका प्रकृति के प्रत्येक वर्ण से, हर छाया से गुन्दी-गुन्दाई थी, कहीं केसर की अरुणिमा थी तो कहीं पकते धान का सुनहरापन। बीच-बीच में भाँति भाँति के नग जड़े थे, कहीं नीलोफर था तो कहीं बनफ़शा, कहीं हिमलिली तो कहीं वकाइल, कहीं हर चीज़ पर छाई हुई केवल नर्गिस-ही-नर्गिस थी।

ज्यों-ज्यों परछाइयाँ छोटी होती गईं त्यों-त्यों पंछियों की रागिनी ऊँची होती गई। उपत्यका-की-उपत्यका संगीतशाला बन इव् अनगिनत सुस्वरों और गीतरागों से गूँज उठी। इन पंछियों के बिरते मेरे मन में भी घर की चाहना जाग पड़ी परन्तु आँखें मलती-मलती फिसफिसा कर रह गईं। इस खुशी की दुनिया में मनुष्य किस खेत की मूली है। मैं बिन चाहे सोचने लगा कि सर्वत्र विस्तृत आनन्द में, इस अनन्त मौज-बहार में मनुष्य ही क्यों दुखिया है। इस संगीत भवन में मानव ही क्यों आर्त्तनाद

छेड़ रहा है। वह भी अपने बन्धनों को तोड़कर हर्ष से क्यों नहीं झूमने लग जाता। जब सामने दरिया का जल कभी छनभर के लिए नहीं रुका तो यह मनुष्य ही क्यों शत-सहस्र वर्षों से मिट्टी के लोंदे बने निश्चल पड़े रहे हैं, जब सर्वतः नित-नित अंकुर फूटते हैं, ऋतु-ऋतु नया-नया रंग निखरता है तो मानव ही क्यों जड़ जीवहीन पड़ा रहा है।

सहसा यह अभिलाषा मेरे मन में आँखे मलने लगी कि सारे जग पर कोई ऐसा छू मन्तर पढ़ दूँ, कोई ऐसा जादू-टोना फूँक दूँ, जिससे प्रत्येक मनुष्य आनन्द और उल्लास से उन्मत हो उठे। दिग्-दिगन्त लोककल्याण और जनोदय के मंगलाचरण से ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठे। सब मनुष्य एक-दूसरे के प्रेम और सेवा में तन्मय हो जायँ। समस्त मानवता सौन्दर्य्य, साधुता और कौशल से मालामाल हो जाय तथा पक्षियों-सी स्वच्छन्दता, नदियों-सी गति, वायु-सी अभिनवता से भरपूर हो जाय। कहीं से ऐसी ताली ही मिल जाय जिससे प्रत्येक मानव के लिए स्वर्ग के पट खोल दूँ। कैसे मिलेगी इस स्वर्ग की ताली ?

मेरी दृष्टि पत्थर पर जो पड़ी तो वह ऐनक से मुझे टुकर-टुकर ताक रहा था जैसे कुछ पूछना चाहता है। असमंजस में कभी दाहिने पैर पर बोझ डाल रहा था कभी बायें पर और यूँ लगता था कि कोई असाधारण प्रश्न उसके मन में उठ रहा है। वह आँखें मचमचाता हुआ दरिया को निहारने लगा। सूर्य्य की किरणें उसके नेत्रों में प्रतिबिम्बित हो रही थीं जिससे वह तीक्ष्ण तथापि छोटी-छोटी अनुभव हो रही थीं। आप-ही-आप मेरे मुँह से निकल गया 'क्या बात है पत्थर मियाँ ?'

उसने दरिया की ओर हाथ उठाते हुए प्रश्न किया, ऐसी आवाज में जैसे अभी-अभी निद्राभंग हो गई हो :—'क्या ऐसा पुल हमारे गाँव में नहीं बन सकता ?' उसके नेत्रों को एक नवप्रकाश उज्ज्वल कर उठा और पलभर के लिए वह विस्तृत होकर बादल-सा विशाल हो गया।

मोम की नाक

उनकी आँख अभी-अभी खुली थी और जम्भाही पर जम्भाही लेते हुए पूरी तरह सचेत होने के लिए वह सुबह के अखबार और प्याली भर चाय की प्रतीक्षा कर रहे थे। सूर्य क्षितिज की ओट से उग आया था और उसकी सुनहली किरणें मोरपंख की भाँति आकाश पर बिखर गई थीं। किन्तु यह आभा खिड़कियों के बाहर ही थी; कमरे के भीतर पहुँचने तक यह दिगन्त विक्षिप्त प्रकाश भी मैला, उदास और फीका-फीका-सा हो जाता था।

नये बाजार में बिड़ला बिल्डिंग्ज, दो पाँतों में आमने-सामने यह चार मंजिला इमारतें खड़ी थीं। उन्हीं में की यह एक फ्लैट थी। यहाँ किसी भी मकान का विशेष व्यक्तित्व न था। सब एक से ही थे, मानो एक ही मशीन में ढाले हुए खिलौने पड़े हुए हों। सब इमारतें खस्ता-हाल होकर निपट एक सी हो रही थीं। निर्माण के पश्चात् किसी की भी कभी मरम्मत या पुताई नहीं हुई थी। सब इतनी भयानक और सूनी-सूनी जान पड़ती थीं, मानो गैर-आबाद हैं। धूप और बारिश से चाटी हुई यह इमारतें चिरकाल से समाधिगत मुरदों की भाँति लग रहीं थीं। दाईं ओर की गली में एक गड्ढा था, जो गिलाजत से भरा रहता था। आस-पास के परनालों से पानी गड्ढे में गिरता रहता था और उसकी घुड़घुड़ की आवाज से ऐसा लगता था कि कोई घोड़ा नाहर साँस के रोग से पीड़ित है।

प्रत्येक बिल्डिंग में चौबीस फ्लैट थे। प्रवेश करते ही एक कमरा था और उससे लगकर चौका। बाकी के दो 'कमरे' स्नानागार और संडास, सीढ़ियों को काटकर बनाए गए थे। वह पहले कमरे में ही बैठे हुए थे और आँगन में खुलने वाली खिड़की से मटमैला उजाला आ रहा था।

कमरे में दो चारपाइयाँ अगल-बगल पड़ी थीं। उनके बीच एक आराम कुरसी रखी थी। खाट पर श्री चड्ढा दीवाल से टेक लगाए बैठा था। उसकी छोटी-छोटी आँखें, जो झुरियों से घिरी रहती थीं, आत्माभिमान की द्योतक थीं। उसका सुगढ़ चेहरा बे-जान दीखता था और लकड़ी पर खुदा हुआ सा लगता था। नींद की खुमार दूर करने के लिए वह लम्बे-लम्बे पट्टों को बार-बार झटक रहा था। दूसरे महायुद्ध से पूर्व वह देहली म्यूनिसिपल कमेटी के चुङ्गी-विभाग में चालीस रुपये मासिक पर मुहर्रिर था। युद्ध के आरम्भकाल में ही वह भारत सरकार के सप्लाई विभाग में क्लर्क भरती हो गया था और पाँच-छः वर्षों में तरक्की करते-करते छः सौ मासिक पर सुपरिण्टेण्डेन्ट बन गया था। इसलिए उसे अब ईश्वर से कोई रोष नहीं था। उसके चेहरे पर 'न्याय नहीं रहा' या 'लोग ईश्वर को भूल गए हैं' के स्थान पर, अब, 'बूँद-बूँद करके दरिया बनता है' 'पैसे-धेले को सँभालो रुपये अपना ध्यान स्वयं रखेंगे', आदि विचार अंकित रहते थे।

श्री चड्ढा का छोटा भाई ईश्वरदास आराम कुरसी में अपने-आपको ठूँसे हुए था। उसका डीलडौल फौजी और धड़ एक मज़बूत तने की की तरह था। वह कुरसी में अत्यन्त व्याकुलता की अवस्था में धँसा हुआ था। कुरसी के हत्थे पर गाल टेकने से उसका चेहरा एक तरफ से सूज रहा था, जिससे उसकी तिरस्कार भावना और भी प्रत्यक्ष हो रही थी।

ईश्वरदास सेना से सूबेदार के पद से छूटकर आया था; वीरता प्रदर्शन के लिए उसे पदक प्राप्त हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सेना के भारतीयकरण से उसे बहुत आशाएँ लगी हुई थीं। तिस पर भी उसे पदच्युत कर दिया गया। इस वजह से वह कुछ चिड़चिड़ा-सा हो

गया था। अब उसे आकाश पर तारों के बजाय जमीन का कीच अधिक दीखता था। विचार-परिवर्तन अनेक तरीकों से होता है। कई-एक के साथ तो यह क्रमशः होता है, जैसे धीरे-धीरे पानी टपकने से अज्ञात ही पत्थर घिस जाय, और कइयों से यह अकस्मात घटित होता है, मानो पत्थर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाए। ईश्वरदास में विचार-परिवर्तन इसी प्रचण्डता से हुआ था। इसलिए उसके नये विचार खुरदरे और अनगढ़ थे। उस स्वतन्त्रता के लिए जो भारत ने प्राप्त की थी, वह उतना उत्साह-पूर्ण नहीं था जितना कि उसका बड़ा भाई और न ही वह अब राष्ट्रीय नेताओं का हर समय गुणगान करता था। यह उसके भाई को एक आँख न भाता था।

तिस पर भी दोनों भाई एक बात पर सहमत थे कि युद्ध समाप्त नहीं होना चाहिए था। युद्ध जीवन के संघर्ष को स्थगित कर देता है। अच्छा वेतन मिल जाता है, जीविकोपार्जन में मेहनत नहीं करनी पड़ती, बेकारी का भय नहीं रहता और खन्दकों का किराया नहीं देना पड़ता, न ही सैनिकों को रोटी-कपड़े पर पैसे खरचने पड़ते हैं।

उस प्रातः वे दोनों भाई ऐंचे-ऐंचे से जान पड़ते थे। इतवार की सुबह थी। दफ़्तर जाने की भागाभाग न होने के कारण बेफिकरी की जो गपशप इस कमरे में छुट्टी के दिन हुआ करती थी, वह उस दिन नहीं थी। अगरचे वह अपने बारे में बातें करके ही एक-दूसरे पर बाजी ले जाने की कोशिश किया करते थे, उनका प्रत्येक वाक्य 'था' और 'थी' पर ही समाप्त होता था—मानो अतीत ही सब-कुछ है, भविष्य के नाम की कोई चीज ही नहीं तो भी उनकी बातें रुचिपूर्ण होती थीं। बातचीत का यह ताँता प्रायः ऐसे बीज की तरह होता, जो पेड़ की भाँति पनपता और बढ़ता जाता और उसमें चित्ताकर्षक विचारों और अनुभवों की कोपलें और डालियाँ लगती जातीं। परन्तु जिस रविवार का यह ज़िकर है, उस दिन हर बात उलटी पड़ रही थी और उनकी संक्षिप्त-सी वार्त्ता प्याज़ की तरह थी, जिसका एक छिलका उतार देने से उतना ही बदबू-

दार एक और छिलका निकल आता है।

ईश्वरदास इस तनावभरी चुप्पी से उकताकर गुनगुनाने लगा, "ऐ काश यह न होता" और उसकी गहरी आवाज़ ने "ऐ काश" को इतना दीर्घ कर दिया कि श्री चड्ढा का दिल भी इसकी वेदनाप्रदता से सिहर उठा।

गरदन उचकाकर श्री चड्ढा ने खिड़की के बाहर झाँका। बिजली के तार पर एक कव्वा अत्यन्त गम्भीरता से कुछ सोचता हुआ जान पड़ता था। उसकी दृष्टि कारखाने के फाटक पर आ रुकी, जो किसी बूढ़े के पोपले मुँह की तरह लग रहा था। वह उठकर खिड़की के समीप आ खड़ा हुआ। छुट्टी के कारण कारखाना मौन था और मजदूरों की बदर-रौ सी काली धारा जो कारखाने की ओर हर सुबह बहा करती थी, उस दिन लुप्त थी, और सड़क सूनी-सूनी जान पड़ती थी। वहाँ केवल एक स्त्री ही दीख रही थी, जो कतरनें, हड्डियां, जूठन आदि बटोरती हुई बीड़ी के कश लगा रही थी। वह इतनी दुबली पतली थी कि चलने की कोशिश के बिना वह इधर-उधर डोलती-मालूम होती थी। कारखाने के फाटक के दायें-बायें छोटे-छोटे घर और झोपड़ियाँ थीं, जहां मुसलमान ठेले वाले रहा करते थे—खूब जीवट वाले, हट्टे-कट्टे, ताकतवर। ये मेहनतकश तीस-चालीस मन माल से लदे ठेले को उतनी आसानी से खींच लेते थे, जितनी सरलता से लड़के अपनी पहिया-गाड़ी चलाते हैं। देश के विभाजन के पश्चात् शुरु सितम्बर में जो दिल्ली में लूट-पाट मची थी, उसके पहर दो पहर में ही, हरी-भरी जीवन से लहलहती इस छोटी-सी बस्ती को भी नष्ट कर दिया गया, मानो किसी हरे-भरे खेत पर टिड्डियों के दल के दल टूट पड़े हों। वह चीख-चिल्लाहट और हू-हा मची, लहू की ऐसी नदियाँ बही कि उधर आँख नहीं की जाती थी। कसाईखाने की सी खून की लपटें और दिल बुझा देने वाली चीत्कार इतनी तीव्र हो गई कि वह सुन्न-सा हो गया था और रक्त की चादर उसे हवा में तैरती हुई दीखने

लगी थी। निर्दयता और बर्बता का यह दृश्य रात भर उसे तड़पाता रहा। परन्तु उसका ग्लानिभाव आगामी प्रातः भीषण क्रोध में परिवर्तित हो गया जब उसने अखबार में पढ़ा कि वह आफत तो मुसलमान ठेले वालों ने ही बरपा कर रखी थी और ठीक यहाँ ही उसके घर के इतना समीप मुसलमानों ने शस्त्रागार बना रखा था, तोप-बन्दूकें बम-गोले, आदि एकत्र कर रखे थे जिससे वह शहर भरको मिट्टी का ढेर बनाने जा रहे थे। अब यहाँ शरणार्थी आ बसे थे और यह नन्ही बस्ती पुनः जीवन के रेल-मेल और जिन्दगी की गहमा-गहमी से लहलहाने लगी थी। श्री चढ्ढा ने देखा कि बहुत से घरों के सामने हरी-भरी लताएँ लहलहा रही हैं। गत सप्ताह इन शरणार्थियों के कई घरों को गिरा दिया गया था और उनकी गृहस्थी को दूर किसी नई बस्ती में ढो दिया गया था, परन्तु वह फिर वहाँ आ बसे थे, जहाँ उनका धन्धा था, जिसके बिना जिन्दगी की बेल पुष्पित-पल्लवित नहीं होती, उजड़-पुजड़ जाती है। म्यूनिसिपल कमेटी के किसी नियम का उल्लंघन करने के आरोप में हथियारबन्द पुलिस उन निहत्थे, जीवन-कार्यों में संलग्न गरीबों पर टूट पड़ी थी। लोगों के बढ़ते हुए रोष और बिगड़े हुए तेवर देखकर पुलिस को टीन, गत्तों, तख्तों और टाट से बने उन घरौंदों को ढहाना बन्द करना पड़ा था। श्री चड्ढा भी गुस्से से आग-बबूला हो उठा था, परन्तु अगले दिन जब उसने समाचारपत्र में पढ़ा कि दोष शरणार्थियों का था और पुलिस वाले बेचारे कानून की रक्षामात्र कर रहे थे तो उसका गुस्सा ठंडा हुआ।

इतने में दरवाजा हिला और समाचारपत्र भीतर सरकाये जाने का स्वर कानों में पड़ा। श्री चड्ढा ने लपक कर अखबार उठाया और चारपाई पर बैठकर उसे पढ़ने में तन्मय हो गया।

सुरखियाँ पढ़ने के पश्चात्, जो स्कूल मास्टरों की हड़ताल के विरुद्ध एक 'राष्ट्रीय नेता' के भाषण के सम्बन्ध में थी, उसकी दृष्टि दायें कालम में बाक्स में दी हुई एक खबर पर आ टिकी। शीर्षक था

"शिमला में भीषण हिमपात"। वह अत्यन्त मग्नता से समाचार पढ़ने लगा। "शिमला में बीतें दिन छः-छः फुट बर्फ गिरी है, सर्दी इस बला की पड़ रही है कि पानी जम जाने से नलके फट गये हैं। हिमपात और शिला-वृष्टि के अतिशय के कारण समस्त नागरिकों का जीवन शिथिल हो गया है।....." समाचार पढ़ते-पढ़ते वह अनजाने ही सर्दी-सी महसूस करने लगा। उसने कमीज के बटन बन्द करते हुए पत्नी को आवाज दी, 'चाय खूब गरम लाना'।

उसकी पत्नी रसोईघर की देहली के पास ही खड़ी थी, चौखट से कन्धा जोड़े। अभी उसके सुन्दर केश उलझे ही हुए थे। खूब अच्छी तरह माँजे हुए बर्तन की सी चमक जो शाम के समय उसके चेहरे पर आ जाती थी, वह उस समय नहीं थी, तिस पर भी, नीले-नीले नयनों में यौवन की आभा से उसका आनन सुहावना प्रतीत हो रहा था। एक सादी-सी धोती उसने पहन रखी थी। उसकी भोली-भाली आकृति से एकदम उस स्त्री का ख्याल होता था जो घर के काम-काज को जी-जान से करती हो, यही नहीं बल्कि उसे धार्मिक कर्तव्य का स्थान देती हो।

श्रीमती चड्ढा को मालूम था कि किस समय मुस्कराना समयानुकूल होता है। जब श्री चड्ढा ने गरम-गरम चाय की फरमाइस की तो वह उस पर नयन गाढ़कर मुस्कराने लगी। परन्तु इस मुस्कान में अचरज का भाव अधिक था। वह यह समझ न पाई थी कि क्यों उसका घरवाला एकाएक कमीज के बटन बन्द कर रहा है और आज क्यों उसने खूब गरम चाय की अनोखी इच्छा प्रकट की है? लटकती हुई लटों को उसने अंगुली से कानों के पीछे किया और मुस्काते हुए नयनों से पति को निहारने लगी। श्री चड्ढा का फूला हुआ मुँह एक बड़े अंडे की तरह लग रहा था। फिर उसने एक नजर से ईश्वरदास की ओर देखा। वह उसी तरह बेचैनी की दशा में आरामकुर्सी में धँस रहा था और उसके हाथ-पाँव इस प्रकार सुन्न थे, मानो एकदम सो गये हैं।

किवाड़ों की दरार में से किसी को गुजरते देखकर श्री चड्ढा ने पुकारा "मास्टर जी—मास्टर जी"। एक किवाड़ को पूरी तरह खोल कर मास्टर हफीज उल्लाह कमरे में प्रविष्ट हुआ और हाथों को अभिवादनार्थ ऊपर उठाने का कष्ट किये बिना ही वह गुम्मटदार आवाज में बोला "नमस्ते जी"।

भारत के विभाजन से पूर्व वह दोनों 'आदाब-अर्ज' किया करते थे और अब मिलते ही मास्टर हफीज़ उल्लाह जोरदार 'नमस्ते जी' कह देता है। कभी उस 'नमस्ते जी' के शब्दों में श्री चड्ढा को घृणा का भाव प्रतीत होता, कभी तिरस्कार का और कभी समस्त वातावरण से अनभिज्ञता की भावना। १९४७ की मार-कटाई में अपना मुसलमान होना छिपाने के लिये उसने दाढ़ी सफाचट करवाली थी, दाढ़ी जिसमें मक्खियाँ नित्य टामक टोइयाँ मारती रहती थीं और बुजरगी से अधिक नम्रता का भाव लिये हुए थी। दाढ़ी मूँड़े-जाने के बाद रोबदार आँखें उसके चेहरे पर बहुत प्रत्यक्ष हो गई थीं।

अगर यह कहा जाय कि अब मास्टर हफीज उल्लाह श्री चड्ढा को एक आँख न भाता था तो यह अतिशयोक्ति न होगी। वह अब उसे अपनी "कम्पनी" के लायक नहीं समझता था। युद्धकाल से पूर्व जब उसका वेतन भी हफीज़ उल्लाह जितना था, तो उनकी गाढ़ी छनती थी। दोनों की उमर एक-सी थी; शिक्षा भी एक-सी; केवल भाग्य का अन्तर था। क्योंकि श्री चड्ढा भारत सरकार के सप्लाई विभाग में आ पहुँचा था हफीज़ उल्लाह वहीं का वहीं रह गया था। श्री चड्ढा ने अब बहुत से "मैनर्ज" सीख लिये थे और मास्टर अब भी पहले की तरह सिगरेट की राख को उँगलियों के हलके से झटके से नहीं, वरन चुटकी मार कर गिराता था।

मास्टर हफीज़ उल्लाह से श्री चड्ढा की मेल-मुलाकात भी अब बहुत कम हो गई थी। आस-पास के लोगों से वेतन नौ-दस गुना हो जाने पर वह अब बात रोब से करता था, जिस कारण कई मित्र और पड़ौसी

उसके बहुत समीप आ गए थे और कई उससे आँख बचाने लगे थे । मास्टर हफीज़उल्लाह अब वहाँ बहुत कम आता था । जब दरवाजे के आगे से गुजरता हुआ वह अपने ध्यान में मग्न ऊपर की मंजिल में अपने फ्लैट की ओर सीढ़ियाँ चढ़ने लगता, तो श्री चड्ढा तिरस्कारवश बुड़बुड़ाने लग जाता—"मास्टर का मास काटा फिर भी टर्र बाकी रही" और यह आलाप कई बार हफीज उल्लाह् के भी कान पड़ जाया करता था ।

इधर-उधर भटकने के बाद वार्ता स्कूल मास्टरों की हड़ताल पर आ रुकी । श्री चड्ढा ने बात छेड़ी "हड़ताल तो आपकी टाँय-टाँय फिस हुई । क्या हाथ लगा ?" उसके स्वर के असाधारण भारीपन से लगता था कि वह शब्द उसके नहीं किसी और के हैं । भावनावेग से उसके नाक में सीटी बजने लगी ।

श्री चड्ढा के लहजे में फटकार-सी अनुभव करने पर मास्टर हफीज़-उल्लाह की आँखों में भी घृणा झलकने लगी । तो भी उसने सँभली हुई आवाज में कहा—"अभी तो केवल पाँच रुपये भत्ता ही मिला है ।"

"सब राष्ट्रीय नेताओं ने आप से हड़ताल न करने का अनुरोध किया था लेकिन आप लोगों ने उन्हे ठेंगा दिखाया, उनकी बात झूठी की, उनका अपमान किया और अब पाँच रुपये के लिए झक मारी, छी ।"

पहले तो मास्टर हफीज उल्लाह् ने सोचा कि ईंट का जवाब पत्थर से दे, परन्तु उनमें जो थोड़ी-सी साहब-सलामत रह गई थी, उसे भी नष्ट करना उचित न समझकर उसने बे-दिली से कहा, "हम गरीबों के लिए तो पाँच रुपये भी कारों का खजाना है ।"

मास्टर हफीज उल्लाह के चेहरे पर विनीतिभाव जो सदा रहता था, वह अब काफूर हो चुका था । उसे देखकर प्रायः यह अनुभव हुआ करता था कि वह मनुष्य नहीं मशीनी पुर्जा है, जो एक बार फूक भर देने से अपने-आप हिलता-डोलता रहता है । उसने कभी दृढ़संकल्प या भावुकता का प्रदर्शन नहीं किया था । दाढ़ी मुँडवाने के बाद जब उसकी चमकदार आँखें निखर आई थीं तो भी भावहीनता और निस्तब्धता का आभास उसकी

आकृति पर वैसे-का-वैसा ही बना रहा था। किन्तु अब स्कूल मास्टरों की हड़ताल में वह और-का-और हो गया था। अब वह पहले सा 'मिट्टी का लोंदा' नहीं जान पड़ता था। उसने जान-बूझकर तनिक चिढ़ाने वाले स्वर में कहा, "हम अध्यापक तो कौम की नींव रखने वालों में हैं। यह जो बड़े-बड़े नेतागण आज हम पर आँखें तरेर रहे हैं उन्हें हम ने ही तो इस योग्य बनाया है। हमें मनुष्यों के समान जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह दो जून पेट भरने का हक तो होना चाहिए।"

श्री चड्ढा के नथुनों से ओठों तक दो रेखाएँ खिची रहती थीं। घृणा के वेग से उत्तेजित होकर जब उसने नाक सिकोड़ी तो ये लकीरें इतनी गहरी हो गईं कि उसका चेहरा अमानुषिक प्रतीत होने लगा। हफीज-उल्लाह ने भी लापरवाही से उसकी ओर आँखें तिरछी कीं और सोचने लगा कि अभी दो दिन की बात है, श्री चड्ढा ने हड़ताल का पूरे जोर से पक्ष लिया था और चन्दा जमा कर रहे लड़कों को आठ आने भी दिये थे। इन लोगों की स्मरण-शक्ति को एकदम क्या हो जाता है। ईश्वरदास उसी तरह कुरसी में निस्तब्ध पड़ा उनकी बातें सुनी-अनसुनी कर रहा था। मास्टर हफीज उल्लाह ने श्री चड्ढा के सामने वाली चारपाई से उठते हुए ईश्वरदास से एक-दो वाक्य-विनिमय किये और 'जान बची सो लाखों पाये' वाले अन्दाज़ से कमरे से बाहर खिसक गया।

कमरे के वातावरण में जो तनाव था, इससे वह और भी बढ़ गया। समाचारपत्र थामे श्री चड्ढा फिर खिड़की के पास आ खड़ा हुआ। उसके विचार में दुनिया की समस्त विपत्तियों का कारण तेरह का अंक था, या दिन-चढ़ते ही बिल्ली का दिखाई देना, या कार्य प्रारम्भ करने पर छींक आ जाना। उसे याद नहीं आ रहा था कि उस दिन कौनसी अशुभ और अमंगलकारी बात हुई थी कि इतवार का-सा दिन इतना मनहूस साबित हो रहा था।

ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता जाता था सामने की बस्ती में शरणार्थियों की

जीवन और उल्लास से भरपूर व्यस्तता और गहमा-गहमी बढ़ती जा रही थी। उसे अचरज होता था कि लोग काम और मेहनत में इतना आनन्द क्यों अनुभव करते हैं। उसे कुछ इस प्रकार लगा कि काम करते-करते उन लोगों की काया बढ़ जाती है, उनका कद ऊँचा हो जाता है। यह सब देख-भालकर उसका चित्त और भी म्लान हो उठा और उसकी व्याकुलता और भी तीव्र हो गई। उसे प्रातःकाल से घृणा सी अनुभव होती थी, उसे दिन से डर लगता था। वह निश्चेष्ट हो सोचने लगा कि रात कितनी प्यारी होती है, कितनी अच्छी लगती है, वह मा के प्यार की भाँति सुखद होती है। रात का सन्नाटा अपने स्नेह और शान्तिप्रद थपकियों और लोरियों से चित्त की भ्रांति का हरण करता है। रात के अंधकार में हर चीज अस्पष्ट दिखाई देती है, धुँधली होकर फैल जाती, लम्बी-चौड़ी लगने लगती है।

श्रीमती चड्ढा को तिपाई पर चाय की प्यालियाँ रखते देखकर वह चारपाई पर आ बैठा। अखबार पर फिर आँखें फेरते हुए उसने प्याली हाथ में ले ली। एकाएक निचली ओर पहले पन्ने के बीच में छपी खबर पर उसकी दृष्टि आ रुकी "दिल्ली में गत पचीस वर्षों में, अधिकतम गरम जनवरी मास" समाचार पढ़कर उसको ज्ञात हुआ कि इस वर्ष जनवरी मास में अधिकतम तापमान औसत से आठ दर्जे अधिक रहा और ऐसा पचीस साल पहले हुआ था।

श्री चड्ढा अखबार में नजरें गाड़कर एकाग्रचित्त होकर फिर समाचार पढ़ने लगा। बायाँ हाथ उठाकर कमीज के बटन खोलते हुए वह फूँके मारकर चाय ठंडी करते हुए चुस्कियाँ भरने लगा।

उसकी पत्नी सिलवटों से भरे पति के व्याकुल चेहरे को ध्यान-पूर्वक देखती हुई सोचने लगी कि अभी-अभी तो गरम-गरम चाय की इच्छा प्रकट की थी। पल-भर में ही मौसम में फिर यह कौनसा परिवर्तन हुआ है।

एक भारतीय का जन्म

लगभग प्रत्येक भारतीय के घर में, यदि उसके पास कोई घर है, एक अंधेरी कोठरी जरूर होती है जिसे भारत के नये नागरिकों के जन्म के लिए नियत किया होता है या जिसे बच्चों के डराने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। एक ऐसी ही कोठरी में पड़े अंगड़-खंगड़ को एक कोने में समेट दिया गया और ताखे में वर्षों से रखे हुए दिये को जला दिया गया। दीपशिखा झपकती हुई आँखों से कोठरी में इधर-उधर झाँककर परिचित चीजों की तलाश करने लगी। उसी तरह वह बूढ़ी चारपाई कोठरी के अंधेरे से डरी-सहमी दीवाल से चिमटी पड़ी थी। उसी तरह, उदास, धूलावृत लिहाफ, दरियाँ, चीथड़े जिन्हें प्रत्येक प्रसव पर इस्तेमाल किया जाता था, उसके पास पड़े हुए थे। दिये को उस कोठरी में बंदी हुए यह साठवाँ वर्ष था और ये दरियाँ, लिहाफ, चारपाई आदि उस समय भी वैसे ही थीं जैसे कि अब।

दिया बालने के पश्चात् शान्ति ने चारपाई को बिछा दिया और लिहाफ-गद्दों आदि को झाड़कर उस पर ठीक से लगा दिया। तत्पश्चात् उसने लीला को लाकर उस पर लिटा दिया और अत्यन्त घुटन के बावजूद खून के धब्बों और मैल के चक्तों से सज्जित उस लिहाफ को उस पर डाल दिया। लीला के हल्दी-से आनन पर काली-कड़वी बेचैनी डरावने पर तोल रही थी। असह्य कपकपी उसकी हड्डियों को हचकोले दे रही थी। जच्चगी का समय करीब जानकर शान्ति ने लाला जी को शीघ्राति-शीघ्र दाई को साथ लेकर आने के लिए बुलावा भेज दिया।

दिये की लौ यह सब-कुछ ध्यानपूर्वक देख रही थी। अनेक बालक उसके इस प्रकाश में जन्मे थे। इसी तरह ही भारी पाँव से चलती स्त्री को इस चारपाई पर लिटा दिया जाता और क्रमशः उसकी चीख-चिल्लाहट और तड़फन बढ़ती जाती। दरद से मुट्ठियाँ भिच जातीं, चेहरे का रंग प्रतिक्षण बदलने लगता और ऐसा लगने लगता कि यह नये जीव के जन्म का समय नहीं वरन् किसी के निर्वाण का समय है और वह बार-बार सोचती कि ये प्राणी इस पीड़ा और घोर यन्त्रणा को किस प्रकार सहन कर सकते हैं। वह देखती कि चारपाई पर पड़ी हुई स्त्री कभी तो पीड़ा से घायल पंछी की भाँति फड़फड़ाने लग जाती और कभी बिलकुल अकड़ जाती। कभी उसका पसीने छूटता शरीर थक-हाँपकर एक ऐसे शक्तिहीन पशु की तरह धड़ाम से गिर पड़ता जिस पर हजारों मन बोझ लदा हुआ हो, जिसमें इस भार के उठाने की और शक्ति नहीं रही हो और कभी-कभी वह कपालिका की तरह क्रोधित हो जाती, सम्हाले न सम्हलती और ऐसा लगने लगता कि वह प्राणी-मात्र नहीं वरन् महानतम सृजनात्मक शक्ति की प्रतिमा है जिस हेतु उसमें इतनी असीम सहनशीलता और दृढ़ता आ गई है—यह सब कुछ देखती हुई, चकित स्तंभित दीपशिखा यह सोचती रहती, कि संसार में जो कोटि-कोटि प्राणी हैं वे सब इतनी ही यन्त्रणा से जन्मे हैं, क्या संसार में ऐसे ही कोटि-कोटि दृश्य घटित हुए हैं।

लीला राधेश्याम की दूसरी पत्नी थी, शान्ति पहली। लाला जी की पहली शादी हुए चौदह वर्ष बीत चुके थे उससे केवल एक लड़की ही पैदा हुई थी जो अब बारह वर्ष की थी। उसके बाद कोई और संतान न हुई। शान्ति ने बहुत जंत्र-मंत्र किये, कई वरत रखे पाठ किये। साधू-संतों की सेवा की। जो कुछ किसी ने सुझाया, किया। परन्तु गत जन्म के कर्मों का फल यह सब-कुछ करने पर भी उसकी गोद फिर हरी न हुई।

लाला राधेश्याम को पुत्र अवश्य चाहिए था। इसके बिना उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती थी। पुत्र के बिना उसकी कपाल-क्रिया और

श्राद्धादि कौन करवायेगा इसी चिन्ता में उसकी नींद तक जाती रही थी। वह रात-दिन यही सोचता रहता और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता उसके जीवन पर दुख और निराशा का यह कोहरा और भी गहरा होता जाता। पुत्र तो घर का दिया होता है, उसके बगैर घर में उजाला कैसे हो सकता है।

आखिरकार उसने दूसरा ब्याह कर लिया। वह बहुत खाता-पीता तो नहीं था किन्तु ईश्वर के घर में सब के लिए दया है। अपनी जात की ही एक लड़की मिल गई जिसका निर्धन पिता उसे बेचने के लिये तो तैयार न हुआ लेकिन ब्याह पर जो सात-आठ सौ की रकम लड़की वालों की ओर से खर्च हुई वह भी राधेश्याम को ही देनी पड़ी। लड़की की आयु थी तो चौदह वर्ष परन्तु खाते-पीते घर की न होने के कारण वह सूखी-साखी थी और छोटी-सी बालिका लगती थी। जिन्दगी का क्या भरोसा होता है, लाला जी को तो पुत्र की जल्दी थी।

पहली रात को ही जब लीला सेज चढ़ी तो लाला जी के नाम तक से डरने लगी। जब वह अपने पति देवता को अपने पास अकेले देखती तो काँपने और रोने लगती। डरी-सहमी कोनों में छुपती फिरती, टाँगों को पेट में घुसेड़कर गठड़ी-सी बन जाती। कभी-कभी तो लाला जी का क्रोध इतना उत्तेजित हो जाता कि वह उसे गालियाँ देते, पीटते जब तक कि उसका शरीर बेबस-सा हो अवरोधहीन न हो जाता।

आखिर वह दिन आया था और लाला जी फूले अंग न समाते थे। इस विचार से कि लड़का ही हो जो जुगत भी किसी ने सुझाई वह उसने विधिवत् की। वैसे भी उसे अपने ईश्वर पर पूरा-पूरा भरोसा था उसने कभी किसी का दिल नहीं दुखाया था, कोई पाप कर्म नहीं किया था। भरसक साधु-संतों, ब्राह्मणों की सेवा की थी। उसने कोई भी ऐसा अवसर नहीं दिया था जिससे परमात्मा को उसकी आशा पूर्ण करने में हिचकिचाहट हो।

लाला राधेश्याम की रामबन में अनाज की दुकान थी। संयुक्त-प्रान्त

के मध्य में यह छोटी-सी मंडी अब किसी अज्ञात कारण से बढ़ती ही जा रही थी और उसने भी आढ़ती का काम छोड़कर अपनी दुकान कर ली थी। रहने का यह मकान जद्दी था। उसके अतिरिक्त वह कुछ धनवान नहीं था परन्तु, वह इस पर भी परमात्मा का संध्या प्रातः धन्यवाद करता रहता था। सिर छपाने के लिए यह घर और दो जून भर पेट रोटी यह भी क्या ईश्वर की कम दयालुता थी। पुत्र के न होने के कारण वह राम-नाम में और भी मग्न रहने लगा। यद्यपि इससे उसके कारोबार को हानि पहुँची, तो भी अब वह सौदे में मिलावट और तोल आदि में धोका-धड़ी कम करने लगा था। रामबन में उसकी ही एकमात्र दुकान थी जिसमें लीद मिली पत्तियों से बनी बीड़ियाँ या गेरू से मिश्रित लाल मिरचें, हल्दी या कंकड़ों से भरा अनाज, दालें नहीं बिकती थी। इस पर इसके ग्राहकों में तनिक कमी ही हुई थी। तिस पर भी ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसके मन में कभी असंतोष या अकृतज्ञता का भाव उत्पन्न हुआ हो। उसके हाथ हरेक के अभिवादन में जुड़े रहते थे। नम्रता सब से बड़ी भक्ति है और जुड़े हाथों में तो भगवान हैं।

रामबन में जच्चाखाना या कोई लेडी डाक्टर तो नहीं थी किन्तु एक मिडवाइफ लगभग साल भर से वहाँ रह रही थी। रामबन के एक स्कूल मास्टर की वह लड़की थी और किसी दूर शहर में व्याही गई थी अब छः सात वर्षों के बाद विधवा होने पर दाईगीरी का इम्तहान पास करके वापस आ गई थी। लाला जी उस मिडवाइफ और खानदानी दाई को बुला लाए थे। शान्ति ने मिडवाइफ को तो कोठरी में न आने दिया। वह विधवा थी और यह समय नहीं था कि किसी प्रकार की अवगुण की बात की जाए।

कोठरी की दीवाल में खिड़की के स्थान पर एक छोटा-सा झरोखा था जो दाई ने आते ही बन्द करवा दिया। उसके पास मैले कथई कपड़ों की गठरी थी, जिसे वह प्रसूत-गृह में पहना करती थी। किवाड़ की ओट में खड़े-खड़े उसने कपड़े बदले और इस रंग-बिरंगे दागों और सिलवटों

से भरे झाबड़-झल्ले वस्त्र में वह फायाकुटनी-सी लग रही थी। उसकी झुर्रियों से भरी हुई त्वचा पर मैल की तहें जम रही थीं और बाल रस्सियों की तरह जमे हुए थे। इस सबके रहते हुए भी उसकी आँखों में चमक थी और भुजाओं में फुरती।

लीला की सौत अंगीठी सुलगाकर ले आई और उसे खाट के पास रख दिया गया। हरी डंडी की सात लाल मिरचों से लीला का चौफेरा करके उन्हें आग में डाल दिया गया और कोठरी की हवा उनके जलने की गन्ध से भर गई। कोठरी में पहले ही साँस लेना कठिन हो रहा था, अब और भी दम घुटने लगा। गर्मी के कारण शरीर में चुनचुनी हो रही थी। पसीने की धारें छूट रही थीं। रजाई में मुँह छिपाये पड़ी हुई लीला को ऐसा लग रहा था कि जैसे उसे उबलते पानी में डुबो दिया गया हो। दीप-शिखा तक दम घुटता हुआ महसूस कर रही थी और कई बार तो वह क्षीण होकर जालों और कालिख से अटी हुई छत की ओर ताकती-की-ताकती रह जाती।

दाई लीला के शरीर को गूँदने लगी। उसकी अँगुलियाँ छल्लों से भरी हुई थीं और बाहें बाँकों व कड़ों से; जो भाँति-भाँति के थे। परन्तु मैल और स्याही ने उन्हें एक-जैसा ही बना दिया था। दाई लीला की पीठ पर खड़ी होकर उसे दबाने लगी। जब वह लीला के शरीर के ऊपर-नीचे चलने का प्रयत्न करती तब इतना भार न सहार सकने के कारण लीला तड़पती और करवटें लेने की कोशिश करती। उसकी कनपटियाँ काँप रही थीं और उनकी टक-टक क्षण-प्रतिक्षण तेज होती जा रही थी। उसके दाँत जुड़ रहे थे और ऐसा लग रहा था कि जैसे उसकी आत्मा को कुरेद-कुरेदकर बाहर निकाला जा रहा हो।

लीला को अपना बोझ न सहारती देखकर दाई नीचे उतर आई और उसका पेट दबाने लगी। अकस्मात् लीला के चित्त में छिपी हुई आकांक्षाएँ उसके मासूम चेहरे पर झलकने लगीं और ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे घनघोर अंधकार में से पौ फट पड़ी हो।

लालाजी की आँखों में भी उल्लास चमक उठा। किवाड़ के पास से हटकर वे चारपाई के समीप आ बैठे। उनकी लम्बी मूँछें तोते की चोंच की तरह निचले होंठ तक मुड़ी हुई थीं। लटकते हुए सन्तुष्ट कपोलों पर एक-दो दिन से न बनी दाढ़ी के बाल आशा से सजीव हो उठे, मूँछों के छत्ते तेज चलती हुई साँसों से हिलने लगे और लम्बी-लम्बी भौंहें तन गईं। लालाजी की आँखें लीला के चेहरे पर एकटक जमी रह गईं। मशीन से साफ किये हुए उसके बंजर सिर पर चोटी ऐसी लग रही थी जैसे घिसे हुए पायदान में से रस्सी लटक रही हो। उसकी वह चोटी भी भावनाओं के उद्वेग से डोलने लगी थी।

मूँछों की चिलमन हिली, बेतरतीब दाँतों की कतारों ने झाँका; और लालाजी के कण्ठ से रुपए-जैसी छनछनाती आवाज निकली : "लड़का होगा लड़का, मेरी दाईं आँख फड़क रही है; जब मैं दाई को बुलाने गया था तो भंगी ने मेरी राह काटी थी।"

लालाजी सोचने लगे कि उनके दिल में लीला के लिए जो अथाह सहानुभूति और स्निग्धता उत्पन्न हो रही है, लीला से ऐक्य की जो भावना उसके भीतर तीव्रतर होती जा रही है, उसे किस तरह प्रकट करे, उसे किस प्रकार शब्दों के साँचे में ढाले।

प्रेम की बातें या कोई और धीमी-धीमी वार्ता वह अपनी पत्नी से करे, उसे यह कभी स्वप्न में भी नहीं सूझा था। उसकी माँ का स्वर्गवास हुए अभी एक वर्ष ही बीता था। उसकी उपस्थिति में पहली पत्नी शान्ति या दूसरी लीला से मतलब की बात करना भी उसने उचित न समझा था। माँ के सामने पत्नी उसके पास बैठती भी थी तो उसकी ओर पीठ करके। उसके भोजन कर लेने के बाद जूठी थाली में ही वे खाना खाती थीं। अभी मोटर-बसें इस इलाके में आम नहीं हुई थीं। जब कभी वह आस-पास के शहरों में काम-धन्धे के लिए जाता तो इक्के द्वारा सफ़र करने में तीन-चार दिन लग ही जाते। जितने दिन वह घर

से बाहर रहता उसकी जूठी थाली साफ़ न की जाती और उसकी पत्नियाँ दोनों जून उसीमें जीमतीं।

भोजन के बाद वे घर के काम-काज में जुटी रहतीं। एक खत्म होता तो दूसरा हाथ में ले लेतीं। जब तक रात का पहला पहर बीत न जाता, सास को चौके से सटे हुए छोटे कमरे में खाट बिछाकर लेटे हुए कुछ समय न हो जाता और इस बात की आशा न रहती कि वह किसी काम के लिए पुकारेगी तब वे सोतीं। इसके बाद शान्ति प्रायः सास के पास ही एक खाट पर जा पसरती और लीला पति के पाँयताने आ बैठती और उसके पाँव दबाने लग जाती। इस तरह कभी ऊँघती, कभी जागती वह उसकी टाँगों की मुट्ठियाँ भरती और तब तक पाँव दाबती रहती, जब तक कि उसका पति उसकी आवश्यकता अनुभव करता हुआ बाँह पकड़कर उसे खींच न लेता या वह स्वयं निद्रा से बेसुध होकर वहाँ ही या पास ही पड़े छोटे पलंग पर न लेट जाती। सास के परलोक सिधारने पर उसका स्थान शान्ति ने ले लिया था और उसी तरह सौत के सामने अब लीला पति की ओर पीठ करके बैठती थी और उससे होठों-ही-होठों में बात करती थी।

विवाहित जीवन की कोई और कल्पना लाला राधेश्याम नहीं कर सकता था, न ही उसे कभी स्वप्न में भी यह खयाल आ सकता कि वह पत्नी से किसी प्रकार की मीठी-मीठी बातें करेगा। अब, जब स्निग्धता और सहानुभूति से गद्गद् होकर वह उससे ऐक्य की भावना व्यक्त करना चाह रहा था, जब वह उससे एक-दो स्नेहवाचक शब्द कहने के लिए व्याकुल था, तो उसे कुछ सूझ नहीं रहा था।

लालाजी ने दाएँ अंगूठे से माथे का पसीना पोंछा। आशाभरी मुस्कान उसके चेहरे पर खेलने लगी; जिससे उसकी पतली तीखी नाक और भी चमक उठी।

लीला के सिर से पसीने की बूँदें टपक रही थीं और आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगी थीं। दाँत किचकिचाती हुई वह फटे हुए होठों

पर बार-बार जीभ फेर रही थी। एकाएक लीला इस तरह कनखियाने लगी मानो वह सबकी हँसी उड़ा रही हो। लालाजी सोचने लगे, 'अगर लड़की हुई तो'—और वह अपने-आप बड़बड़ाने लगे "बड़ा इन्तजार करवाया है इस पुत्र ने, बड़ा भाग्यवान् होगा, बड़ी मिन्नतें चढ़ावे लेकर आया है।" वे मूँछों पर हाथ फेरने और मुस्कराने लगे। किन्तु उसे अनुभव हुआ कि इस मुस्कराहट में उल्लास और उत्साह कम था और चिन्ता और आशंका अधिक थी। पति को मुस्कराता देखकर लीला ने भी होंठ खोल दिए। उसके कानों में तूतियाँ बोल रही थीं और नस-नस कसक रही थी।

कोठरी की हवा बहुत भारी हो चुकी थी; यहाँ तक कि दीप-शिखा से कालिख की लकीर निकलने लगी थी। लालाजी हुक्का मँगवाकर गुड़गुड़ाने लगे। वे लीला के पास आकर पानी आदि के लिए पूछते और उसके लगातार करवटें लेने के कारण बिस्तर पर पड़ी हुई सलवटों को सँवारते जाते।

दाई ने लीला को उठाकर दीवार से टेक लगाकर बिठा दिया और उसके फूले शरीर को गूँदने, थपकने, रगड़ने और उस पर हल्की-हल्की चोटें करने लगी। फिर उसने निचले हिस्से पर एक मैला-कुचैला कपड़ा बाँध दिया।

इतने में बिरादरी-मुहल्ले की स्त्रियाँ समाचार पाकर पहुँचने लगी थीं। वे उस कोठरी में ही ठस-ठसकर बैठती जा रही थीं। छल्लों और अंगूठियों की छुरियों से लदे हुए हाथों का भरपूर इस्तैमाल करते हुए दाई बच्चा जनने का प्रयत्न कर रही थी। साथ-ही-साथ वह यह शिकायत भी करती जा रही थी कि "लोग दाइयों को बिलकुल सिर पड़े पर बुलाते हैं, कहीं ज्यादा माया न ले जाय। दबाने, घूटने, और मालिश के लिए पहले कभी-कभी बुला लिया होता तो अब इतना कष्ट क्यों होता।"

स्त्रियों का जमघट अपनी कानाफूसी में लगा हुआ था। कोई

पूछती, 'तुलसी का पौधा तो घर में है न', कोई कहती, 'मंगल का बरत तो नित्य रखती रही है'; कोई बीच में बोल उठती, 'ज़रा इसके माथे पर कालिख का चिह्न तो लगा दो, समय आ गया है।'

लीला की प्रसव-वेदना अत्यन्त बढ़ चुकी थी। दर्द की तेज लहरें उसकी हड्डियों में से फूट रही थीं। सिर कन्धों में धँसता जा रहा था और वह बेढब तरीके से साँस ले रही थी। उसकी मटमैली आँखों में लाल डोरे उभर आए थे और मस्तिष्क में कोई चीज़ गेंद की तरह उछल रही थी।

प्रसव में देर होते हुए देखकर लीला की सौत और एक-दो और स्त्रियाँ पास आकर दाई की सहायता करने लगीं। दाई भी बच्चा पैदा करने की कोशिश में अपने हाथ, पाँव और बूढ़ी बुद्धि का पूरा-पूरा उपयोग कर रही थी।

दाई बार-बार हाथों को कोठरी के कच्चे फर्श पर रगड़कर अपने काम में जुट जाती, किन्तु असफल ही रहती; साथ-ही-साथ पसीना पोंछती हुई वह अपने मैल-भरे सिर को भी खुजाती जाती। इस तरह आधा पहर और बीत गया। कमरे में निराशा फैलती जा रही थी। स्त्रियों के स्वर भी अब धीमे पड़ गए थे। घुमस से सबका दम घुट रहा था। लालाजी के चेहरे पर कभी चिन्ता की कालिमा दौड़ने लग जाती और कभी क्रोध से उसके माथे पर नन्ही-नन्ही सलवटें पड़ जातीं। लीला की आँखों से अश्रुओं की मोटी-मोटी बूँदें टपक रही थीं। उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी और आँखों में डरावनी परछाइयाँ फैल और सुकड़ रही थीं। अपरिचित भयानक छायाएँ उसको अपनी ओर बढ़ती हुई मालूम दे रही थीं।

दाई बच्चा जनने की कोशिश में फिर हाथों का भरपूर इस्तैमाल करने लगी। लीला की चीखें और भी भयानक होती जा रही थीं। वह बुरी तरह तड़प और कराह रही थी। ऐसा लग रहा था कि जैसे उसकी कमर बीच से ही टूटने लगी है।

लाला राधेश्याम, जो कुछ समय के लिए बाहर चला गया था, फिर कोठरी के भीतर चला आया और मुँह लटकाकर बैठ गया। उत्सुकता और चिन्ता का भाव गहरी सहानुभूति की भावना में परिणत हो चुका था। लीला को इस पीड़ा और यातना से ग्रस्त देखकर उसके अपने चेहरे का रंग जाता रहा था और जीभ तालु से लग गई थी। लीला की हड्डी-हड्डी और बोटी-बोटी को इस तरह कराहता देखकर दीप-शिखा सोच रही थी कि कैसे कोई प्राणी इतनी यातना को सहन कर सकता है।

हाथों को इधर-उधर घुमाकर दाई फिर जोर लगाने लगी। लीला और भी तड़पने, कराहने और लोटने लगी। दाई ने शक्ति-भर प्रयत्न किया और पीछे को लपकी। उसके हाथों में खरगोश-जैसा गुलाबी ढाँचा था जिसे वह नन्ही-नन्ही टाँगों से पकड़े हुए थी। उसकी पीठ पर थपथपी लगाते हुए वह लहकती हुई आवाज में बोली, "सौ लड्डू खाऊँगी, लड़का है।"

लालाजी खुशी से उछल पड़े और उनके मुँह से निश्चेष्ट निकल गया, "हे भगवान् तेरी महिमा !"

दीप-शिखा को लीला की अपार सहनशीलता तथा इस कड़ी यातना पर विजय पा लेने की उसकी असीम क्षमता का खयाल हो रहा था और उसे लग रहा था कि वह स्त्री नहीं वरन् किसी महान् सृजनात्मक शक्ति की प्रतीक है।

चार दिन की चाँदनी

शान्ति ने आलस्य-मिश्रित जँभाई ली। कोयला खाने से काले पड़े हुए जबड़े एक-दो बार फैलाये और फिर ऊँघने लग गई। वह अत्यन्त बेबसी से सोच रही थी कि शाम को घर लाँघते समय गाय जो दहलीज चाटने लगी थी, सो मुझ अभागिन के लिए इस शुभ चिह्न के क्या मानी हैं। दाईं ओर के ताख में टिमटिमाती हुई कुप्पी पर गुल आ गया था और वह धुएँ की पतली-सी लकीर छोड़ रही थी। ऊपर दीवार पर गुरु नानक और कृष्ण मुरारी के चित्र लटक रहे थे। कई वर्ष हुए शीशा टूट जाने से इन चित्रों के आकार फीके और मटमैले पड़ चुके थे। बाईं ओर के ताख में हनुमान जी और किसी देवी की मिट्टी की छोटी मूर्तियाँ रखी हुई थीं। ताखों और मूर्तियों पर भयंकर गर्द जमी हुई थी।

नियमानुसार शान्ति घर का काम-धंधा समेटकर चारपाई पर पसरने से पूर्व उन देव-चित्रों और मूर्तियों के आगे मत्था टेकने के लिए वहाँ आ बैठी थी। उसकी बेटी निम्मो रीं-रीं करती हुई, खाली मशक-सी उसकी छाती को मुँह में लिये अभी उसकी गोद में पड़ी हुई थी। शान्ति उसे सुलाने के लिए बाएँ घुटने पर रखे उसके सिर को सहला रही थी। उसके मन को यह चिन्ता सता रही थी कि कहीं रात को निम्मो जाग न जाय। उसी साँझ छत से गिर पड़ने के कारण उसकी पीठ बुरी तरह खरोंची गई थी और उसका हुड़कना-बिलखना अभी-अभी ही बन्द हुआ था। वैसे तो वह किसी-न-किसी दुर्घटना का शिकार होती ही

रहती थी, परन्तु छोटी-बड़ी खराशों और खरौंचों के अतिरिक्त उसे कोई हानि न पहुँचती। चाहे वह कोठे पर से गिर जाय या सीढ़ियों से लुढ़क जाय, चूल्हे से जल जाय या उस पर कोई बोझ आ गिरे, मोटर-टाँगे के नीचे आ जाय या ढोर-डंगर के पाँव-तले रौंदी जाय, वह सदा कड़ी चोट से बची रहती थी। और बालक इससे कहीं छोटी दुर्घटना से हाथ-पाँव तुड़ा बैठते और उनकी जान के लाले पड़ जाते, किन्तु निम्मो का इन खराशों से अधिक कुछ न बिगड़ता। उस दिन दूसरे पहर जब वह चानों की माँ के दुमंजले से लुढ़की तो गली में पड़ी पीढ़ी पर जा टिकी। जब शान्ति धड़ाम की आवाज और चीखें सुनकर उधर लपकी तो उसने देखा कि पीढ़ी तो चूर-चूर हो गई है और उसकी खपचियों से निम्मो की केवल पीठ ही छिलकर रह गई है। चोट तो मामूली थी, किन्तु छिली पीठ पर कपड़े की रगड़ से उसे बहुत दर्द हो रहा था।

उसने चित्रों और मूर्तियों के आगे मत्था टेका। जपजी की पहली 'पैड़ी', जो केवल उसे स्मरण थी, उसने फिर जपी। वह हाथ बाँधकर नतमस्तक होकर मत्था नहीं टेका करती थी, वरन् हाथों को कानों पर रखकर देह झुकाकर आगे-पीछे सिर को हिलाया करती और फिर एकदम बाँहों को जमीन पर टेककर नाक फर्श से लगा लेती।

शान्ति के पके हुए रंग के मरदाने चेहरे पर गाल की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। उसकी कनपटियों पर खिचड़ी-से बालों के गुच्छे लटक रहे थे और उसके घने रूखे बाल इस्पात के रंग के थे। उसकी ठोड़ी इतनी दबी हुई थी कि दायें-बायें मांस की हल्की झालरें लटकती मालूम देतीं। उसकी आँखें गाय की-सी मन्द और सहिष्णु थीं, जिनमें हल्के उन्नाबी डोरे उभरे हुए थे। जीवन से अरुचि और निराशा का भाव उसके अंग-अंग पर सदा छाया रहता।

वह उठकर खाट पर आ लेटी और निम्मो को पास डालकर उसके सिर को धीरे-धीरे थपथपाने लगी। साथ वाली चारपाई पर उसका

लड़का सो रहा था और प्राय: वह लड़की को भी उसके साथ ही लिटा दिया करती थी। सारे दिन वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे और एक मिनट के लिए भी उनमें सुलह नहीं होती थी। केवल रात को सोये-सोये उनकी बाँहें आप-से-आप एक-दूसरे से लिपट जातीं और शान्ति को इससे ठंडक पड़ती। शान्ति का यह पुत्र किशोरी कुछ पगला-सा था। अभी वह घिसटने ही लगा था कि गली के कुत्ते ने उसे काट लिया था। कुत्ता तो बावला न था किन्तु इञ्जैक्शनों के जहर का असर उसके दिमाग पर पड़ा और अभी तक भी वह पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था।

सन्तान की ओर से किसी प्रकार की आशा होने की बजाय, इन दोनों बच्चों के लिए वह सदा चिन्तित रहती। यह लड़का उसका सहारा तो क्या होगा, शायद वह अपने पाँवों पर कभी भी न खड़ा हो सके। उससे बड़ा लड़का कमाने योग्य हुआ तो घर से चला गया। कन्या तो पराया धन है, उसके कारज पर झोलियों रुपये नहीं तो कुछ तो उसे खरच करने ही पड़ेंगे। माँ की ममता से विवश जो सूखे टुकड़े वह जुटा पाती, उसमें से भी वह कौड़ी-कौड़ी जमा करती रहती।

शांति फिर जँभाई लेकर सिर खुजाने लगी। उसके चटकते बाल उँगलियों में उलझ-उलझ जाते। निदासी होकर उसने शरीर को ढीला छोड़ दिया। वह इतनी थक जाती कि करवट लेते समय उसके शरीर से पटाखे छूटते थे। वह अत्यन्त बेबसी की अवस्था में फिर सोचने लगी कि सूरज डूबते समय गाय जो दहलीज चाट गई है उस अभागिन के लिए सौभाग्य के इस चिह्न का कोई अर्थ हो सकता है। कल्पना की आँखों के आगे उसका जीवन घूमने लगा और प्रत्येक आने वाली झाँकी पहले से अधिक दुखदायक होती।

वह करवा चौथ का दिन था। चाँद निकल आया था और सधवा स्त्रियों ने बरत समाप्त कर लिया था। वह बाहर बासी भूली की-सी चाँदनी की कल्पना करने लगी। कूके शाह की हवेली से उगे पीपल के

पत्तों की पतझड़ की धीमी-धीमी पुरवा में सरसराहट सुनाई दे रही थी। एकाएक मकान के भीतर चूहों की धमाचौकड़ी और गली में गायों की रम्भाहट सुनाई दी। घरों के परनाले अभी चल रहे थे। कुएँ की चरखी की आवाज भी कभी-कभी सुनाई दे रही थी। अभी दस भी नहीं बजे लगते थे।

शांति अभी कच्ची नींद में ही थी कि उसे दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक सुनाई दी; जैसे कुत्ता कान फटफटाता है। पहले तो उसने उसकी ओर ध्यान न दिया, जब दुबारा, तिबारा दस्तक सुनाई दी तो अनमनी-सी उठकर उसने एक दरवाजा खोलकर तनिक बाहर झाँका।

अपने पुत्र हरनामदास को देखकर शांति के अचरज की कोई सीमा न रही। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह आँखें झपकाती हुई उसे ऐसे देखने लगी, जैसे कोई खोटे सिक्के को परखता है। इतने में हरनामदास 'माँ-माँ' कहता हुआ उससे लिपट गया।

हरनामदास शुरू से ही बहुत आवारा और निडर लड़का था। तीन साल की बात है, तब वह चौदह वर्ष का ही था, कि उसने पड़ोस के एक मकान में सेंध लगाकर ढाई हजार के गहनों पर हाथ साफ किया। पुलिस को बकवाने में देर न लगी। डेढ़ वर्ष के कारावास के बाद जब वह घर लौटा तो अत्यन्त नेक और भगत बना हुआ था। प्रातः-संध्या पूजा होती। हर मंगल हनुमान और इतवार को भैरों के मन्दिर दर्शन करने जाता; सब नित्य-नियमों का पालन करता। हर एक को विश्वास हो गया था कि जेल ने हरनामदास की जीवन-धारा को ही पलट दिया है और वह अब बहुत नेक चलन हो गया है।

पशमीने के एक थोक व्यापारी के यहाँ उसे मुनीमी का काम मिल गया। शांति फूली न समाती और हर समय उसके ही गुन गाती रहती; आखिरकार उसका पुत्र उसके दुःख हरने योग्य जो हो गया था। वैधव्य

के दस-बारह वर्षों में पहली बार ही आशा की किरण उसे दीख पड़ी थी। किन्तु अभी हरनामदास को उस धन्धे में लगे हुए तीन हफ़्ते भी नहीं हुए थे कि अवसर पाकर वह आठ सौ रुपये लेकर, वहाँ से उड़न्छू हो गया और बहुत ढूँढ़ने-भालने पर भी उसकी कोई खबर न मिली। अब साल मास के पश्चात् वह अपने-आप लौट आया था।

हरनामदास आँखें झुकाए हुए माँ के पास खाट पर आ बैठा। कुप्पी के मन्द प्रकाश में उसके नेत्रों में मटमैली आभा चमक रही थी और पके हुए कद्दू के रंग की तरह उसका चेहरा पहले से भी चौड़ा हो गया था। उसके गाल की हड्डियाँ, जो माँ की भाँति ही उभरी हुई थीं, सूजी-सूजी मालूम हो रही थीं और उसके नथुने पहले से अधिक फैले हुए थे। शांति ने पुत्र को नजर भरकर देखा। उसका टेंटुआ हिल रहा था, लेकिन मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। उसकी आँखों से मूक आँसू टपकने लगे और होंठ थरथराने लगे। शांति भी अपने आँसुओं को काबू में न रख पाई और उसने पुत्र को अपने आलिंगन में ले लिया।

एक सप्ताह तक तो हरनामदास पूर्ण मौन धारण किये रहा। किसी से बात न की, किसी के प्रश्नों का उत्तर न दिया। दो जून भोजन के लिए भी शांति को उससे जूझना पड़ता। अन्त में उसके मुँह का ताला टूटा और वह माँ के पाँव छूकर गिड़गिड़ाने और क्षमा-याचना करने लगा। हाथ बाँधकर उसने प्रण किया कि वह अब सदा सीधी राह चलेगा। बदनाम हो जाने के कारण कोई उसे अपनी दुकान के पास यदि नहीं फटकने देगा तो क्या, वह अपना कोई छोटा-सा धन्धा कर लेगा और जो-कुछ कमा सकेगा उससे माँ की सेवा के परम कर्तव्य का पालन करेगा।

दो-तीन सप्ताह तक वह इसी तरह माँ को आश्वासन देता रहा।

सारा दिन वह बाहर रहता और सन्ध्या को जब थका-माँदा घर लौटता तो माँ को यह सोचकर सान्त्वना होती कि वह दिन-भर कोई काम-धन्धा ढूँढ़ता रहा है। कई बार तो हरनामदास इतना थका हुआ दिखाई पड़ता कि माँ का दिल भर आता और आँसुओं को पलकों के नीचे छिपाती हुई वह उससे कहती : "इस तरह परेशान होने की क्या जरूरत है, काम आठ-दस दिन बाद ही सही।"

एक दिन तीसरे पहर जब हरनामदास घर लौटा तो उसका हुलिया और ही था। वह पहलवानों के ढंग की रेशमी पगड़ी बाँधे हुए था। पाँच घोड़े की बोसकी का कुरता और बढ़िया मलमल की धोती से उसकी पिंडलियाँ साफ दिखाई दे रही थीं। पेटेण्ट लैदर की चरमराती हुई गुरगाबी जूतियाँ पहने उसने घर में घुसते ही माँ को जोर से पुकारा और पास आते ही खुशी-खुशी उससे लिपट गया। तथा साथ के कुली से फल, मिठाई और बढ़िया-बढ़िया कपड़ों की टोकरी लेकर उसके सामने रख दी।

दो दिन में सारे घर की हालत सुधर गई। टूटे-फूटे की मरम्मत, सफेदी, रंग-रोगन, परदों और दरियों ने कुछ और ही रंग ला दिया। बिजली का कनैक्शन फिर से लग गया। बैठक चादरों और गाव-तकियों से सज गई। शान्ति मुँह में उँगली दिये हुए सोचती रहती कि यह क्या हो रहा है। पूछने पर हरनामदास यही बताता कि अब उसने घुरकू पहलवान की शागिर्दी कर ली है। शहर के मशहूर दानी घुरकू पहलवान का नाम शान्ति ने भी सुन रखा था। भारत के विभाजन से पूर्व वह घुरकू बदमाश के नाम से मशहूर था और सट्टे की जुए-बाजी से उसने सैकड़ों घर उजाड़े थे।

हिन्दू-मुस्लिम-दंगों के दिनों में उसने हिन्दू युवकों को संगठित करने में बढ़-चढ़कर भाग लिया था और दस अगस्त १९४७ को मुसलमान पुलिस और फौजियों के पाकिस्तान चले जाने के बाद मुसलमानों के मुहल्लों को लूटने और आग लगाने में उसके द्वारा संचालित युवक-

संघ ने सबसे अधिक उत्साह दिखाया था। पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् मुसलमान सट्टेबाज़ों और जुआरियों के चले जाने से घुरकू बदमाश (जिसे लोग अब घुरकू पहलवान कहने लगे थे) का काम बहुत चमक उठा था और उसके पास दान-पुण्य के लिए अब बहुत धन बच रहता था। जो उससे उपकृत होते वे उसे घुरकू भगवान् कहते हुए उसका इतने जोर से जय-जयकार करते कि उसकी सट्टेबाजी से कंगाल बने लोगों का हाहाकार सुनाई तक न पड़ता।

घुरकू पहलवान के साथ बेटे की संगत के विचार से शान्ति पहले-पहल अत्यन्त भयभीत हुई। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट विचार निर्धारित करने पूर्व ही वह बेटे के स्नेह और सेवा-भाव से गद्गद् हो उठी, और जो सम्मान उसे एकाएक प्राप्त होने लगा था उससे अत्यन्त प्रभावित हो गई। सारा दिन हरनामे पहलवान और हरनामे सेठ की पुकारें देने वालों का ताँता लगा रहता। प्रातःकाल गली के चौंतरे पर डण्ड पेले जाते। हर आगन्तुक की आवभगत होती। हरनामदास ने घर के काम-काज के लिए एक पहाड़ी लड़का नौकर रख लिया था। माँ को वह किसी काम में भी हाथ तक न लगाने देता। मना करने पर भी नित्य भाई-बहन के लिए कपड़े आदि लाता रहता। उसने माँ के लिए एक-एक इंच मोटे अक्षरों वाली गीता ला दी थी, जो एक लम्बे-चौड़े ग्रन्थ के समान थी। उसके लिए रक्त चन्दन का पीढ़ा और सुरा गाय का चँवर भी वह ले आया था। शान्ति को यह बड़े आकार की गीता बहुत पसन्द आई थी और सुबह-शाम वह इसके पाठ में संलग्न रहती।

हरनामदास छोटी आयु से ही बड़ा हठी और अभिमानी था। अपनी विधवा माँ, भाई और बहन में अरुचि के भाव को छिपाने की उसने कभी कोशिश नहीं की थी और न ही इससे पहले उनकी ओर

उसने कोई कर्तव्य अनुभव किया था। किन्तु अब तमाम नातेदारों से वह लगाव और सहानुभूति प्रदर्शित करता। माँ की ओर तो उसकी श्रद्धा असीम थी। सोने से पहले वह नित्य माँ के पास आ बैठता और भाई-बहन के भविष्य के सम्बन्ध से उससे परामर्श करता और उसे कहता कि बहन का शुभ कारज शहर से बाहर किसी कोठी में वह इतनी धूम-धाम से करेगा कि सब वाह्-वाह् कर उठेंगे। इन बातों पर शान्ति खुशी से बाग-बाग हो जाती।

शान्ति जब कभी हरनामदास को फिजूल-खरची से मना करती और सँभालकर रखने के लिए उसके हाथों में पकड़े हुए नोटों को छीनने की कोशिश करती तो वह कहता माँ, "निश्चिन्त रहो, रुपया बनाने की मशीन अब मेरे हाथ लग गई है।" जब वह उसे इस रुपये के बारे में प्रश्न पूछती तो हरनामदास का रंग सफेद पड़ जाता, वह कन्धे उचका लेता और भौंहें सिकोड़कर लम्बी लकीर बना लेता। बनावटी मुस्कराहट से वह बात आई-गई कर देना चाहता। मानो कुछ छिपा रहा हो। परन्तु जब शान्ति हठ करती और अपने प्रश्नों को दोहराती तो वह एक साँस में धुरकू पहलवान के सट्टेखाने का जिक्र करता जहाँ अब उसे काम मिला हुआ है। कभी ठण्डा साँस लेकर पीठ को सहलाने लग जाता, जैसे कोई कीड़ा या खटमल वहाँ आ घुसा हो और बात काटने के लिए अटकल हाँकने लग जाता या माँ को अपनी जेल की कहानियाँ सुनाने लग जाता। जेल में एक स्त्री भी कैद थी। उसके संग उसका आठ वर्ष का बच्चा था। एक दिन उस बच्चे ने जेल की रोटी खा ली, जिसमें उस दिन कुछ अधिक रेत और बुरादा मिला हुआ था, जिससे वह मरणासन्न होकर पीड़ा से तड़पने लगा। तमाम कैदी यह देखने के लिए वहाँ एकत्र हो गए कि वह माँ किस प्रकार पुत्र के लिए रोती और कलपती है। कभी हरनाम-दास उदास होकर कहता कि माँ जेल में मेरी उदासी की कोई सीमा नहीं थी और मैं तेरी याद करके इतना रोया करता था कि मेरा तकिया

पानी-पानी हो जाता। ऐसी कहानियाँ सुनाकर वह खिसयानी हँसी हँसता हुआ वहाँ से उठकर चला जाता।

शान्ति सोचने लगती कि अकारण ही वह कितनी आसानी से झूठ बोल सकता है। जेल में वह जब भी उससे मिलने गई उसने सीधे मुँह बात तक नहीं की थी और उसके सिरहाने तो कुछ भी नहीं होता था उसके बिस्तर में केवल एक जेल का मोटा कम्बल ही था। जब कभी वह पुत्र से पूछती कि जुए की यह कागज की नाव कितनी देर चल सकती है, देर-सबेर पुलिस इसे बन्द करवा ही देगी; तो उसका उत्तर तैयार होता कि मैं उन डरपोक लोगों में से नहीं हूँ जो अपने हाथों से तो तिनका भी नहीं तोड़ सकते किन्तु किस्मत पर सदा भोंकते रहते हैं। जब सट्टाखाना बन्द हो जायगा तो कोई और दाव सोच लिया जायगा। जब शान्ति उससे शराब आदि से दूर रहने की विनती करती तो सान्त्वना देता कि केवल वह इस सबका मजा चख रहा है ताकि कोई लालसा न रहे और शीघ्र ही वह इतना धर्मात्मा और भलामानस बन जायगा कि दिया लेकर ढूँढ़ने से भी कोई उस-जैसा नहीं मिलेगा। ऐसा कहते हुए उसकी आँखों की शून्यता और भी गहरी हो जाती, उसकी आवाज में कर्कशता आ जाती और उसके उभरे हुए कपोल किसी अज्ञात भावना से लाल हो जाते।

कुछ दिनों में ही हरनामदास के विवाह के लिए सन्देश-पर-सन्देश आने लगे। जीवन में पहली बार लोग शान्ति के आगे हाथ फैला रहे थे और उससे इज्जत का व्यवहार कर रहे थे। वह किसी से बात पक्की न करती, क्योंकि इन प्रस्तावों और प्रार्थनाओं में उसे विशेष उल्लास अनुभव होता था। हरनामदास भी उसे विश्वास दिलाता कि 'माँ जैसी बहू चाहो पसन्द करो। ऐसी हो जो तुम्हें सुख दे; तुम रानी बनकर बैठो और वह हाथ बाँधे तुम्हारी आज्ञा का पालन करती फिरे। बस तनिक

सोच-समझकर बात पक्की करना। आजकल की लड़कियों को तो बैंगन का अचार तक डालना नहीं आता।'

दुःख के अँधियारे में शान्ति ने सारा जीवन व्यतीत किया था। वह इस आकस्मिक सम्मान और आराम से चौंधिया उठी। वह इसे समझने में असमर्थ थी और आस-पास हो रहे तमाशे को शिशुवत् आश्चर्य से देख रही थी। वह रात-भर छत की ओर ताकती-ताकती सोचती रहती, अस्पष्ट विचार उसके मस्तिष्क में उलझन पैदा करते रहते, किसी अनहोनी की अशुभ सनसनाहट उसके कानों में ऊँची और हल्की होती रहती और कभी-कभी अज्ञात भय से उसका हृदय और भी तेजी से धड़कने लग जाता। वह इस अनिश्चितता और भय से दूर रहना चाहती थी, किन्तु यह उसके शरीर का एक अंग बन गया मालूम होता था। हरनामदास यार दोस्तों में रुपया पानी की तरह बहा रहा था और वह इस सबका कारण तक पूछने से डरती थी। मुहल्ले में कोई कहता कि चोरी का माल मोरी में जा रहा है, कभी कान में भनक पड़ती कि राँड का साँड सराफे में गहने बेच रहा था, किन्तु उसमें इस पर सोचने का साहस तक न रहा था।

इस स्थिति में यदि कहीं उसे सान्त्वना मिलती तो वह था सब ओर से उसका आदर-सत्कार। लड़कों का जमघट उसे माताजी के बिना सम्बोधित न करता। मुहल्ले की स्त्रियाँ उससे परामर्श के लिए आतीं, आपसी झगड़े में उसे पंच बनातीं। पखवारे भर में ही शान्ति के जीवन में ऐसा परिवर्तन हो गया था कि वह आँखें झपकती रह जाती।

एक दिन दोपहर को हरनामदास घर आया तो उसकी जेब में नोटों का पुलिन्दा था। शान्ति ने उससे ये नोट बार-बार माँगे, किन्तु वह सदा की तरह टालता रहा। शान्ति ने पुत्र से बहुत विनती की कि ये नोट मुझे दे दे, तेरे विवाह के काम आयेंगे इस तरह धन को बर-

बाद करने से क्या लाभ। माँ के बार-बार आग्रह करने पर हरनामदास उसे सौ रुपये देने पर तैयार हो गया, लेकिन इस शर्त पर कि विवाह आदि के लिए जो कुछ सामग्री लानी है उसी दिन ले आए और इसे किसी प्रकार भी अपने पास न रखे।

शान्ति ने इन नोटों को सँभालकर रखने के लिए पुराने सन्दूक को अन्दर से निकाला। हरनामदास जा चुका था, किन्तु फिर भी उसने सन्दूक खोलने से पहले किवाड़ लगा लिये। वह यह देखकर बेसुध हो गई कि वर्षों से सँभालकर रखा हुआ उसका स्त्री-धन और कौड़ी-कौड़ी जमा की हुई उसकी पूँजी वहाँ नहीं थी।

शान्ति पत्थर-सी हो गई। वह माथे को हाथों से पकड़कर फर्श पर बैठ गई। उसके अन्तःकरण में निस्तब्धता भर गई, स्वराभाव की सूचक खामोशी नहीं, वरन् भारी सन्नाटा; जो बहुत भारी कड़वे कसैले धुन्ध की तरह उतर आया था, फैलता जा रहा था और प्रत्येक स्वर का गला घोंट रहा था। जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई तो "राँड का साँड— राँड का साँड" के शब्द डंके की चोट की तरह उसके कानों में बज रहे थे।

बीज और फल

गणराज्य-दिवस का अनन्त उत्साह, लाखों प्रसन्नवदन नर-नारियों की रेल-पेल, मीलों लम्बे फौजी मार्च और प्रान्त-प्रान्त की झाँकियों की धूम-धाम। भारत का सतरंगी अतीत, भाँति-भाँति का वर्तमान और अरुणोदय-सा स्वर्णिम भविष्य मानो अनेक गुफाओं से बाहर आ रहे हों और घुल-मिल रहे हों।

नई दिल्ली की सड़कों के आर-पार असीम जन-समूह जमा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दो विशाल नद पन्द्रह-बीस गज की दूरी पर साथ-साथ बहे जा रहे हों। बैंड के बाद बैंड, एक पलटन के बाद उससे भी अधिक चुस्ती से मार्च करती हुई दूसरी पलटन, झाँकी के बाद झाँकी, हर एक पहली से सुन्दर और दुलहिन की तरह सजी-सजाई। यह ऐसा दृश्य था कि आँखें चौंधिया गईं। आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण इस वातावरण में मेरे रक्त की एक-एक बूँद खुशी से नाच उठी थी।

तीसरे पहर यह मेला-ठेला समाप्त हुआ। इस भीड़-भड़क्के में कोई सवारी कैसे मिलती। मैं दिल्ली शहर की तरफ लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ कुछ वर्ष पहले की एक घटना के विषय में सोच रहा था।

गाँधीजी की अन्तिम यात्रा का समय था। आज की तरह ही उस दिन भी असीम जन-समूह एकत्र था। इसी तरह आमने-सामने कतारों-पर-कतारें लगी थीं, किन्तु आज की भाँति उल्लसित नहीं, शोकाकुल। आज की तरह ही मैं इण्डिया गेट के मोड़ पर पन्द्रह-बीस कतारों के बीच खड़ा था। आगे बहुत-से मारवाड़ी बैठे राम-धुन जप रहे थे, लेकिन वह

गांधीजी की राम-धुन से कुछ भिन्न थी : "रघुपति राघव राजाराम, सबको सम्पत्ति दे भगवान्"। जब गांधीजी का पुनीत शव पास आने को था तो मैंने उन्हें चेताया कि 'सम्पत्ति दे भगवान्' नहीं 'सन्मति दे भगवान्' है। एक-दो बार मेरे टोके जाने पर उनमें से एक ने चिढ़कर कहा : "बाबूजी यह तो हिन्दी है, आप क्या जानें।"

शहर की ओर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ मैं सोचता रहा। 'सन्मति' और 'सम्पत्ति' के घालमेल में मैं स्वयं बार-बार उलझता रहा और यह निश्चय नहीं कर पाता था कि मुझे 'सन्मति' प्रिय है या 'सम्पत्ति।

अजमेरी गेट से गुजरता हुआ मैं कुण्डेवालान में जा पहुँचा था। पिंडलियाँ गरम होने के कारण थकावट ज्यादा नहीं लग रही थी, किन्तु प्यास से गले में काँटे चुभने लगे थे। एक पान वाले की दुकान पर मैं कुछ पीने के लिए रुक गया।

यह दुकान गज भर चौड़ी थी, उसकी लम्बाई का अन्दाज लगाना कठिन था; क्योंकि अन्दर पाँच-छः गज के बाद अँधेरा था और कुछ दिखाई नहीं देता था। दुकान के दाईं ओर एक अँगीठी पर चाय उबल रही थी, उसके पीछे टाँड पर सोडावाटर और शरबत की बोतलें थीं। बाईं ओर एक चौकी पर पान रखे थे, जिसके ऊपर दुकान के परतकर खोले गए दरवाजे के साथ सिगरेट और बीड़ियों के बण्डल लटक रहे थे; अन्दर परचून के अतिरिक्त और भाँति-भाँति की सामग्री पड़ी दिखाई देती थी।

आस-पास की सभी छोटी-बड़ी दुकानें खुली थीं और लोग इस तरह अपने नित्य-कर्म में दिनचढ़े से संलग्न जान पड़ते थे मानो उस दिन की कोई विशेषता ही न हो। पहले पहर जब इण्डिया गेट के पास फौजी परेड शुरू होने लगी थी तो एकाएक आकाश पर बादलों की मलमल-सी पतली सुरमई ओढ़नी फैल गई थी, हल्की-सी फुहार कुछ मिनट हुई थी और फिर इन्द्रधनुष की सतरंगी पताका से उत्तर से दक्षिण तक आकाश सज्जित हो गया था। बाद में बादल छितराकर छोटे-छोटे

टुकड़ों के रूप में आसमान पर तैर रहे थे।

इस बाजार में गणराज्य-दिवस का यदि कोई चिह्न था तो ऊपर आकाश में तैरते हुए बादलों के ये सुरमई मलमल से टुकड़े थे। जी में आया इस दुकानदार से पूछूँ कि गणराज्य-दिवस की परेड देखने नहीं गए! फिर सोचा कि सुबह चार साढ़े चार बजे जब स्टेशन जाने वालों की आवा-जाई शुरू होती है इसे दुकान लगाते मैंने देखा है और आधी रात से पहले यह कभी यहाँ से हिला नहीं। यहाँ बैठे-बैठे दोनों जून घर से आई रोटी खा लेता है। इस बेचारे की एकाध घण्टे के लिए दुकान से अनुपस्थिति कहाँ सम्भव थी। तेज ज्वर होने पर भी मैंने उसे भीतर ही लेटा देखा था।

रुख बदलकर मैंने दुकान पर लटके हुए शीशे में देखा। अपने परेशान चेहरे को ताकता हुआ मैं उठने को ही हुआ था कि फिर वहाँ बैठ गया।

उस दुकान के समीप खड़े एक गरीब से लड़के ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। वह अत्यन्त ललचाई हुई नज़रों से चाट खाते हुए लड़कों का देख रहा था। वह किसी बहुत दरिद्र घर का चिराग़ मालूम होता था। उसका कोट बहुत फट चुका था और बाजू फटी हुई तंग आस्तीनों से कोहनियों तक बाहर निकल रहे थे। घिसा-फटा कालर, कई महीनों से अनकटे बालों में फँस रहा था। उसका जूता बड़े साइज़ का था, जिसे पाँव पर ठीक बैठाने के लिए आगे के भाग में कागज-कपड़े के टुकड़े भरे हुए जान पड़ते थे। उसकी कमीज का एक-मात्र बटन गलत काज में लगा हुआ था। मुरझाया हुआ पीलन मारा उसका चेहरा घृणा और पीड़ा से भरा हुआ था और अर्धविकसित सूखे फूल की भाँति दिखाई पड़ पहा था। उसकी चौकस आँखों में तिरस्कार की भावना प्रत्यक्ष थी। रुक-रुककर वह खाँसने लग जाता और कमर झुकाकर अपने नन्हे-नन्हे कासनी रंग के हाथों से सीना थाम लेता।

झाड़ू देने वाले कमेटी के भंगी अभी-अभी सड़क साफ कर चुके थे

और हवा में लटकते धूलि-कण फटे बादलों से आँखमिचौनी करते हुए अस्तप्राय: सूर्य की रश्मियों में एकदम सोने-चाँदी के चूर्ण की भाँति जगमगाने लग गए थे। एकाएक मेरी दृष्टि एक छ:-सात वर्षीया कन्या पर पड़ी जो शराब में मदहोश पिता की उँगली पकड़े उसे घर की ओर ले जा रही थी। उस मनुष्य का मुँह सूजा हुआ था जैसे जलंधर के रोग से पीड़ित हो। उसके उभरे कण्ठ में ताबीज फँस रहा था। सड़क पर चलते-चलते वह राह चलते लोगों से बातें करता जाता था। मेरे पास से गुज़रते समय वह मुझे घूर-घूरकर ताकने लगा। उसने नाक सिकोड़ ली, जिससे उसकी आँखें और भी गहरी दीखने लगीं। दाँत किचकिचाता हुआ वह तिरस्कारवश बड़बड़ाया : "अक्खो मक्खो, मेरे बच्चे को अल्लाह रखो।" मैं भी सहानुभूति से उसे देखता हुआ मन-ही-मन सोचने लगा, क्या आजाद हिन्दुस्तान में भी हम आनन्दोल्लास के लिए शराब पीने और बच्चे पैदा करने के अतिरिक्त और कोई साधन प्राप्त नहीं कर पाए।

हवा प्रशान्त हो गई थी। एकदम उमस-सी हो गई। ढलता हुआ सूरज भी बिलकुल निश्चेष्ट-सा था, और ऐसा लगता था कि जैसे वह कूचा चेलान के कारखाने की चिमनी से टेक लगाकर बैठ गया है और क्षितिज की गहराई में कूदने से एक प्रकार की भीरुता उसे रोक रही है।

मेहतर नाली साफ करता-करता गन्दगी उसीके छोर पर बखेर रहा था। उसके पीछे-पीछे एक भिश्ती मशक से पानी की क्षीण धारा उस पर उँडेलता जा रहा था। ऐसा लगता था कि मानो पानी की यह पतली धार एक लम्बी सलाख है, जो गन्दगी को कुरेद-कुरेद कर और भी बदबू फैला रही है। इसी बीच दर्जन-डेढ़ दर्जन गधे सड़क पर से गुज़रे। उन पर लदे हुए बोरे कूड़ा-करकट से लबालब भरे थे और उनमें से कूड़ा सड़क पर गिरता जा रहा था जिसे खिलवाड़ मचाने वाले अधनंगे लड़के ठोकरों से सड़क पर बखेरते जाते थे। उनके खेलने के लिए सड़कों के अतिरिक्त और कोई स्थान नहीं था।

सामने की लाख वाले की दुकान के आगे लाख सेंकने के फेंके हुए चीथड़े बिखरे पड़े थे। उन्हें माँस के टुकड़े समझकर चीलें रह-रहकर हवा में मँडरा रही थीं। कभी-कभी राह चलता कुत्ता उन लाखी-चीथड़ों की तरफ भी लपक पड़ता और उन्हें क्षण-दो क्षण सूँघकर चुपके से लौट जाता। मैं ये सारे दृश्य अत्यन्त एकाग्र चित्त होकर देख रहा था, मानो किसी सुरीले राग से बेसुध हो रहा हूँ। मैं नई दिल्ली में जो-कुछ देखकर आ रहा था, यह उससे इतना भिन्न था कि मेरी आँखें टिकी-की-टिकी रह गई थीं।

सूरज छिपने से पहले ही वातावरण में मटमैले अँधियारे की फुहार चटकती जा रही थी। यह प्रकाश रोगी के चेहरे-सी मुर्दनी और पीड़ा लिये हुए था। मुझे प्रत्येक वस्तु ऊपरी-ऊपरी लग रही थी। एकाएक ऐसा प्रतीत होने लगा कि अपने शरीर में भी मेरी अपनी आत्मा नहीं है, वह किसी और की घुस आई है।

छिड़काव की बैलगाड़ी छिड़काव करती हुई बाजार में से गुजर रही थी। उस छः-सात गज चौड़े बाजार में दोनों ओर चार-पाँच मंजिले मकान अनमने निढाल-से खड़े थे। दुकानदारों ने कहीं-कहीं दुकानें बाजार में आगे कर रखी थीं और छिड़काव की गाड़ी तंग सड़क में से मुश्किल से गुज़र रही थी। दुकानों पर बिजली के लैम्प, या गैस की रोशनी होने लगी थी। जिससे बाजार का सूनापन कुछ कम होता जा रहा था।

सड़क पर खेलते लड़के गाड़ी के पीछे-पीछे पानी की फुहारों से छेड़-छाड़ करते चलने लगे। मेरे समीप खड़ा हुआ वह गरीब-सा लड़का भी जूते फटफटाता उनके साथ हो लिया। मुझे उधर ही जाना था। गाड़ी से आगे निकलने का कोई अवसर न पाकर मैं भी उनके कुछ पीछे-पीछे चलता रहा। गाड़ीवान ने लड़कों को नाली से लटकने से मना किया और पीछे से हट जाने के लिए बहुत चीखा-चिल्लाया। परन्तु जब वे न टले तो बैलों को हाँकने वाली छड़ी लेकर वह गाड़ी

के पीछे आ धमका। सब लड़के भाग गए, केवल उस गरीब निर्दोष लड़के को ही एक-दो छड़ियाँ पड़ गईं। वह रोता हुआ गाड़ीवान को दाँतों से काटने के लिए लपका। मैंने उन्हें अलग-अलग किया। अन्य लड़के कुछ दूरी पर खड़े हँस रहे थे।

एकाएक वह गरीब लड़का खाँसी के आवेश से बेबस हो उठा। उसका सिर इतने जोर से थरथराने और हिचकोले खाने लगा कि उसकी तेल और मैल के धब्बों से काली किश्टी टोपी नीचे गिर पड़ी। दूसरे लड़के और भी जोर से हँसने लगे। उस गरीब लड़के के ओंठ फिर गुस्से से काँपने लगे। मुक्के को भींचता हुआ उसका कंपित हाथ आप-से-आप ऊपर उठ गया। लेकिन उसने बेबसी से उसे नीचे गिरा लिया। इतने में दूसरे लड़के भी उसकी ओर दौड़ आए थे। एक ने उसकी टाँग में टाँग अड़ाई और वह ठोड़ी के बल धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उसकी ठोड़ी पर गहरा घाव हुआ। कोहनियाँ और घुटने छिल गए थे और उसका कोट लहू-लुहान हो रहा था।

वह गरीब लड़का फूट-फूटकर रोने लगा। दर्द से भरी चीखों से उसका दम घुटता जा रहा था। इतने में दूसरे लड़कों का दिल भी पसीज गया। हम उस लड़के को दिलासा देकर एक डाक्टर की डिस्पेन्सरी पर ले गए और मरहम-पट्टी करवाई।

उस लड़के के यह बताने पर कि उसका घर अधिक दूर नहीं है, मैं उसे घर तक पहुँचाने के लिए साथ हो लिया। अगले चौक में दाईं ओर की सड़क 'मक्खी मारान' निम्न वर्ग की बस्ती की ओर ले जाती थी; हम उधर को मुड़े। इस सड़क को गाड़ियों के लिए बन्द हुए कई मास हो चुके थे। मरम्मत के लिए उसे खोद और उखाड़ दिया गया था। जगह-जगह कंकड़ों, पत्थरों, रेत और मिट्टी के ढेर लगे हुए थे। सड़क के कुछ हिस्से की मरम्मत भी हो चुकी थी, किन्तु फिर एकदम सारा काम रुक गया था और बाकी की सड़क वैसे ही टूटी-फूटी रह गई थी। राहगीरों ने आने-जाने के लिए पगडंडियाँ बना ली थीं। धीरे-धीरे उस

सड़क पर से कमेटी की लालटेनें, खम्भे और जंगले सब गायब हो गए थे। वहाँ दुकानें भी कम थीं, इसलिए प्रकाश अधिक नहीं था। गण-राज्य-दिवस के उपलक्ष्य में यहाँ कहीं रोशनी नहीं की गई थी। न ही पताकाएँ और झंडियां थीं, जिनसे नई दिल्ली के बाजार सजे हुए थे। मैं बड़ी मुश्किल से उस ऊबड़-खाबड़ सड़क पर राह टटोलता उस लड़के के घर की ओर बढ़ रहा था।

रात्रि अद्भुत गति से अन्धेरे मकानों से बाहर रेंग रही थी। सुस्त, उदासीन मार्ग पर मलिन सन्नाटा बैठता जा रहा था। आकाश में तारे आँखें खोल रहे थे, लेकिन अभी वे नीले आसमान के अथाह समुद्र में बनते-मिटते बुलबुलों की तरह जान पड़ते थे। फटे-फटे बादलों की गति इतनी मन्द हो गई थी कि वे बिलकुल स्थिर लगते थे। ताँबे के रंग-जैसा अस्तप्राय सूर्य अब उठे गुब्बारे की तरह लटक गया था और उदय होते हुए चौदस के चाँद का धोखा दे रहा था।

थोड़ी दूर जाकर हम एक तंग बदबूदार गली में प्रविष्ट हुए। लगता था कि इस गली में दोपहर को भी पूरी तरह प्रकाश नहीं पहुँचता। तंग मैली-कुचैली गली में बेतरतीब मकान काफी ऊँचे-ऊँचे थे। घुटी हुई धूएँ से लदी, पीलन भारी हवा बिलकुल गतिहीन थी। सारे मुहल्ले पर दीनता और दरिद्रता इस प्रकार तनी हुई थी मानो ढोल पर चमड़े की झिल्ली कसी हुई हो। मार्ग में जगह-जगह खाँसी की आवाजें, ढाईमारी-सी उत्साहहीन सूरतें, बच्चों की गंदगी के निशान, टूटे पतनालों से टपकता पानी हमारा स्वागत कर रहा था। एक जगह एक बुढ़िया छोटे-से खटोले पर टाँगें सिकोड़े लेटी हुई थी और कुन्द आरे की-सी आवाज में खर्राटे ले रही थी। एक मकान की ऊपरी मंजिल से कोई हुक्के को औंधा किये पानी गिरा रहा था और झाड़ू का तिनका उसके आबने में फेर रहा था। हम उससे बचकर सड़क के दाईं ओर हुए तो वहाँ मकान की दहलीज से बँधा कुत्ता हमें देखकर भोंकने लगता। अन्य कुत्तों ने भी उसका अनुकरण किया और सारा

मुहल्ला इस कर्कश कुहराम से प्रतिध्वनित हो उठा।

वह लड़का एक जीर्ण-शीर्ण नानकशाही ईंटों से बनी हवेली के सम्मुख जाकर रुक गया। जब हम अंधेरी ड्योढी में घुसे तो भूत-भवन का-सा आभास होता था; हाथ-को-हाथ दिखाई नहीं देता था और हर प्रकार की लपटें इस तरह दरो-दीवार से छूट रही थीं कि ऐसा लगता था मानो यह कोई अमानुषिक स्थान है और जिस दुनिया से मैं परिचित था उससे इसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। ड्योढ़ी के फाटक के पास ही सीढ़ियाँ-सी मालूम दे रही थीं। बाकी तीनों तरफ दो-दो दरवाज़े थे। जो अधखुले थे उनमें से अत्यन्त क्षीण प्रकाश आ रहा था। भीतर की जो तनिक-सी झलक दीखती थी उसमें वह धरणिलोक नहीं प्रतीत होता था। हर एर भाग में अलग-अलग परिवार बस रहे थे और ऊबड़-खाबड़ सामान में हर चीज उलट-पलट पड़ी हुई थी।

लड़के ने सीढ़ियों से सटा हुआ दरवाज़ा खटखटाया और एक अधेड़ उम्र के मरियल-से आदमी ने किवाड़ खोलकर बाहर झाँका। मैंने ज़रा आगे बढ़कर उसे नमस्कार किया। उसका मुँह अभिवादन-वश मुसकराने की कोशिश में अधखुला रह गया, मानो वह इस दुविधा में पड़ गया है कि इस तंग गलीज मकान में वह मेरा स्वागत कैसे करे?

उसके चेहरे पर झुर्रियों का जाल-सा बुना हुआ था। जब उसने कमरे के भीतर मुड़ते हुए अपने जुड़े हुए हाथों से मुझे भीतर आने के लिए आमंत्रित किया तो मैंने देखा कि उसकी झुर्रियाँ चौकस हैं, ढीली नहीं और उम्र में वह बूढ़ा नहीं, जैसा कि पहली नज़र में लगा था।

उस कमरे में मैंने जो-कुछ देखा एक भयानक दुःस्वप्न की भाँति आजीवन मुझे परेशान करता रहेगा। मैंने भी गरीबी बहुत देखी थी, किन्तु दरिद्रता और बेसरोसामानी की इस तसवीर की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। कमरे के चप्पे-चप्पे पर अभाव और अभाग्य ने

अपनी मुहर अंकित कर रखी थी।

मुझे दरवाजे पर देखकर दो लड़कियाँ और एक स्त्री, जिनके तन पर पूरा कपड़ा भी नहीं था, एक परदे के पीछे जा छिपीं। दरवाज़े के करीब उस कमरे में ही रसोई बन रही थी और एक स्त्री सुलगते हुए चूल्हे में ज़ोर-ज़ोर से फूँक रही थी। लकड़ियाँ सस्ती और गीली जान पड़ती थीं और कमरे में धुआँ मिले वातावरण में छत से लटकती लालटेन बगैर अधिक प्रकाश दिये ही कमरे पर छाई हुई थी। उस स्त्री ने जगह-जगह से मसकी हुई अपनी धोती को समेटते हुए मुझे सन्देह की दृष्टि से देखा। उसकी मोटी-मोटी आँखें धैर्य और सहन-शीलता का प्रतीक थीं, किन्तु उसका चेहरा और गरदन बुरी तरह सूख रही थी। चूल्हे के पास ही उपलों, ईंधन और कबाड़ का ढेर लगा हुआ था और उसके साथ कोने में कमरे की एक-मात्र चारपाई पड़ी थी, जिस पर अधेड़ उम्र की औरत लेटी हुई मैले चीकट तकिये पर सिर पटक रही थी; तकिये के बीच में बिलकुल काला दायरा पड़ रहा था। उसके साथ पड़ा एक नन्हा-सा बच्चा सो रहा था।

उस मकान की दीवारें जगह-जगह से उखड़ी हुईं, तथा धब्बों और तरह-तरह के दागों से भरपूर थीं। एक मचान पर फूलदान में धूल से लदे पुराने, बेरंग कागज के फूल पड़े हुए थे, पीतल का फूलदान भी बिलकुल काला पड़ चुका था। उसके ऊपर शहनशाह जार्ज पंचम की तस्वीर वाला पुराना-सा कलैण्डर लटक रहा था, जिसके वर्ष का कोई चिह्न बाकी नहीं रहा था।

मेरी जीभ तालु से चिपट गई और दिल से ऐसी भयातुर भावनाएँ फूट पड़ीं जो सार्थक तो नहीं थीं, किन्तु जिनमें दहकते हुए अंगारों-सी जलन की पीड़ा थी। मैं सर्वथा मूक और पत्थर-सा बना खड़ा रहा। मेरे मस्तिष्क पर अनगिनत हथौड़े ज़ोर-ज़ोर से चोटें लगा रहे थे।

उस मनुष्य ने लड़के की घायल ठोड़ी की ओर देखा और लड़के ने चोट लगने का हाल बताया। मैंने मूक भाव से ही आश्वासन दिया कि

दुर्घटना में इस बेचारे का तनिक भी दोष नहीं, मेरे मुँह से एक शब्द तक न निकल सका। उन्हें नमस्कार करके गरदन लटकाये हुए मैं कमरे से बाहर आ गया।

गली में आकर मैंने गहरी साँसें खींचीं। आँसुओं की मोटी-मोटी बूँदें मेरी पलकों में झिलमिला रही थीं। मेरी आँखों के सम्मुख वह कमरा ही घूम रहा था और मुझे अच्छी तरह राह तक नहीं सूझ रही थी।

गन्दगी जलाने की भट्टी बदबूदार धुआँ उगल रही थी। उसके पीछे एक पुरानी दीवार में पीपल का पेड़ उग रहा था, जिसकी एक शाखा से फटा हुआ पतंग गज-डेढ़ गज डोर सहित लटक रहा था। गली के अंधियारे में चमगादड़ डुबकियाँ ले रहे थे।

मेरे सम्मुख वह कमरा ही घूमता जा रहा था। एकाएक मेरी कल्पना जार्ज पंचम की धुआँ खाई मटमैली तसवीर पर जा टिकी और निश्चेष्ट होकर मैं सोचने लगा कि क्या इन लोगों को भारत के स्वतन्त्र होने की सूचना भी नहीं। क्या सचमुच इन लोगों के लिए स्वतन्त्रता का कोई अस्तित्व ही नहीं।

गोरों के काले साये

सूरज ढलना शुरू हो जाने पर भी अभी धूप में चमक थी। ज्येष्ठ के वायु-रहित अपराह्न में उमस थी, जलन थी। धूप में इतनी तेजी थी जिसमें हिरन भी काले हो जायँ। दुर्भिक्ष-पीड़ित चटियल खेतों में से मरघट-जैसा धुआँ उठ रहा था। खेतों से मरणासन्न बीजों की बास आ रही थी और सूखने के कारण उनकी तिड़कनों में छिपी टिड्डियाँ कभी-कभी अशुभ टिटकारी छोड़ रही थीं। यदि कहीं बीजों से अंकुर फूटे थे तो धूप से पकी मिट्टी में से उन सुकुमार कल्लों का निकलना दूभर हो रहा था। मिट्टी के ये पत्थरदिल ढेले नवजात गायों का इस तरह दम घोंट रहे थे जैसे अकाल-पीड़ित बंग-जनता का कंठ दबाये हुए थे ये जमींदार, महाजन और उनके गोरे रक्षक।

दुःख और यातनाओं से यदि भागा जाय तो क्या वे पीछा छोड़ देते हैं; क्या आँखें मूँद लेने से उनका अस्तित्व जाता रहता है। ये लोग दुःख सहने और जीवन और सम्मान के लिए लड़ने से घबराते थे, किन्तु इस देश को और यहाँ के लोगों की दशा को तो देखो। रोटी और जीवन के लिए संघर्ष से अधिक उत्तम और पवित्र और कुछ नहीं; जिस धरती की गोद में हम जन्मे हैं उसकी स्वतन्त्रता के लिए और जिन लोगों से हम स्नेह करते हैं उनकी रक्षा तथा पालन-पोषण के लिए जूझने से अधिक पुनीत कर्तव्य और क्या हो सकता है। किन्तु ये लोग संघर्ष से घबराते रहे। भीरु लोग भय से भागकर संघर्ष को नहीं टाल सकते, और न ही इस तरह भीरुता से दुःख और यातना से पीछा छुड़ाया जा सकता

है। जब अकाल घटने लगा था तो लोग क्यों न उससे जूझे, क्यों न उन्होंने अकाल के स्रष्टाओं से लोहा लिया। उन्होंने इस तरह मक्खियों की तरह मरना क्यों स्वीकार किया। मैं लगातार यही सोचता रहा। मेरे पाँव भारी होते गए और आत्म-ग्लानि से मेरी गरदन झुक गई।

उजड़े-पुजड़े हथेली-जैसे निचाट खेतों में से होते हुए हम अगले गाँव की ओर चले जा रहे थे। वातावरण में मक्खियों की भिनभिनाहट और भी ऊँची हो गई थी और कभी-कभी उनका दल-का-दल हम पर झपट पड़ता। इससे हमने अनुमान लगाया कि अब बस्ती आने ही वाली है। कहीं-कहीं तो ये मक्खियाँ मनुष्यों के शवों पर बैठकर इतनी निर्भीक और खून की प्यासी हो गई थीं कि उनसे पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता और हम लाचार हो उठते।

होते-होते हम गाँव में पहुँच गए। यहाँ कहीं-कहीं मकानों से धुआँ उठ रहा था। हवा बन्द होने के कारण झोंपड़ियों से धुआँ बहुत ऊँचाई तक सीधा उठता, लम्बे-से बाँस की तरह, फिर ऊपर आकाश में हवा के झोंकों के साथ कभी इधर टेढ़ा हो जाता कभी उधर, और किसी पत्र-हीन झाड़ी की तरह उसकी शाखाएँ इधर-उधर फैल जातीं।

अकस्मात् आकाश के ऊपरी भाग में भी हवा बिलकुल ठहर गई और ऐसा मालूम होने लगा कि सूर्य भी निस्तब्ध हो गया है। धूप की रंगत चम्पई थी, मानो गाँव-का-गाँव कमल ग्रस्त-सा हो रहा है। प्रत्येक पदार्थ उखड़ा-उखड़ा-सा अनुभव हो रहा था। सारा गाँव सिकुड़कर इतना छोटा और बनावटी जान पड़ रहा था कि ऐसा मालूम होने लगा कि जैसे किसी अनाड़ी ने बच्चों के खेलने के लिए घरौंदे बनाते-बनाते काम अधूरा छोड़ दिया हो। कभी ऐसा लगता कि इस कड़कते सूर्य के प्रकोप ने इस गाँव को झुलसा दिया है। गाँव की दहलीज पर ही पीपल के पत्रहीन पेड़ों का झुरमुट था, जो अब प्रागैतिहासिक काल के देवकाय

दरिन्द्रों के ढाँचे के समान प्रतीत होते थे। उनमें से राम चिड़िया उड़-उड़कर भँभीरियों के पीछे-पीछे चक्कर काट रही थी।

क्या यह झोंपड़े-झोंपड़ियाँ वृद्ध हैं ? क्या यह गाँव बूढ़ा हो चुका है ? क्या यह क्षय-ग्रस्त लूले-लँगड़े घर-घरौंदे अब दम तोड़ रहे हैं ? क्या आयु होगी इस गाँव की, पचास, पाँच सौ या पाँच हजार वर्ष ? क्या यह जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होकर युग-युगान्तर से यों ही पड़ा है; अल्पाहारी, मितभाषी, बैरागी के समान; जो आदिम काल से मोक्ष-याचना में समाधिस्थ हो। कहीं यह यहाँ चौरासी लाख योनियों से छुटकारा पाकर पत्थर-सा बना तो नहीं पड़ा है, परिवर्तनहीन, गति-शून्य। मुक्ति और निर्वाण के लिए निशि-दिन तिलमिलाते हुए भारतीयों को काश यह मालूम होता कि उन्हें मुक्ति तो प्राप्त हो चुकी है। वे भी तो इस ग्राम की भाँति ही पत्थर से बने पड़े हैं, सूखे हुए उस ठूँठ की तरह, जिस पर नित्य नई कोंपलें अब नहीं फूटतीं। वेजान पदार्थ पल-पल बदलते, घटते-बढ़ते रहते हैं; परन्तु ये जीवधारी होने पर भी जड़ हैं, इतने विरक्त कि चलने से काम चल जाय तो वे दौड़ने के नहीं, खड़े रहने से काम सर जाय तो क्या मजाल वे कदम उठाने का कष्ट करें, बैठने से गुज़र हो सके तो खड़े रहें उनके दुश्मन, और यदि लेटा रहा जा सके तो बैठना-उठना कैसा, क्षुधा की पीड़ा के कारण उनके प्राण भले ही निकल जायँ, लेकिन छिगुनी तक नहीं हिलनी चाहिए—और क्या होती है जन्म-मरण से मुक्ति; और क्या होता है निर्वाण, मैं आप-से-आप सोचने लगा। इस नमक की खान में तो हर चीज़ नमक हो रही थी, यहाँ मौन भी ऐसी प्रशान्ति और तोष प्राप्त कर रहा था कि इसकी तुलना में जंगल बियाबान के सन्नाटे को भी मुखर कहा जा सकता है।

सर्वत्र विचित्र-सी बास उठ रही थी, क्षय और अवसान की गन्ध। कहीं यह राशि-राशि शून्यता, यह सघन अचलता, यह अथाह विरक्ति-भाव सिमटकर यही सडाँध तो नहीं बन गया ? कहीं यह हमारे अपने जीवन की निश्चेष्टता और जड़ता ही तो नहीं, जो पहाड़ बनकर हम पर

टूट पड़ी हो। उस सारे गाँव में एक ही पक्की इमारत दीख पड़ रही थी—मस्जिद, खुदा का घर। उसके मीनार झूठे थे, ठोस होने के कारण उन पर चढ़कर नहीं, उनके नीचे खड़े होकर ही अजान दी जाती थी।

परन्तु ये लोग तो सजीव हैं, जीवन से भरपूर। इस जनता में तो अथाह प्राण-प्रवाह है। आदिम काल से ही इसका शोषण हो रहा है, खाल नोची जा रही है। ब्राह्मणों और महन्तों ने, सम्राटों और सामन्तों ने, नवाबों और शहनशाहों ने उन्हें लूटा-खसोटा, उनकी खाल उधेड़ी, परन्तु हर बार उन्होंने नई और पूर्ववत् सुन्दर त्वचा प्राप्त कर ली; मगर इस बार इनकी नित्य नई खाल ओढ़ लेने की सामर्थ्य कहाँ गई। असंख्य जल-प्लावन और भूकम्प आये, अनगिनत दुर्भिक्ष और महामारियाँ घटित हुईं, परन्तु प्रत्येक आपत्ति में से ये साफ बच निकले। परन्तु इस बार इस गाँव पर से मरघट का-सा धुआँ क्यों उठ रहा है।

मुझे कुछ महीने पहले की घटनाएँ अच्छी तरह स्मरण हो आईं थीं। परिवार-के-परिवार, गाँव-के-गाँव, दुर्भिक्ष से उन्मूलित होकर किसी महा-प्रलय के भीषण अन्धड़ में बेबस से कलकत्ता की ओर बुहारे जा रहे थे, दिग्-दिगन्त में हाहाकार मचा हुआ था। लोगों की इस चीख-पुकार में अत्यन्त निराशा व्याप्त थी। उसमें क्रोध बिलकुल भी नहीं था, कोई इच्छा, यहाँ तक कि दया की याचना भी नहीं। यह ऐसे पशु की कराह की भाँति थी जो घातक घाव से व्यथित हो और अटल मृत्यु के त्रास से तड़प रहा हो।

लोग घरों में, मैदानों में, सड़कों पर, ठसाठस भरे रेल के डिब्बों में, मौत का शिकार हो रहे थे। जिधर देखो उधर नर-नारियाँ, बच्चे अकाल का ग्रास बन रहे थे। संसार-भर में भगवान् की सबसे अधिक साधना करने वाले प्राणियों के प्रति भगवान् का इतना भीषण प्रकोप, इस पर भी इन लोगों की जलती हुई आँखें भगवान् की ओर ही उठी

हुई थीं। मर्द स्त्रियों को भगवान् के आसरे छोड़ गए थे। बच्चों को माताएँ भगवान् का नाम लेकर तज गई थीं और सर्वपालनहार के पास अपनी इस सृष्टि के लिए महामरण का यह तांडव ही था।

× × ×

साढ़े-चार महीने हुए हम इसी गाँव में आए थे सहायता के लिए खाद्य-सामग्री लेकर। तब गाँव-का-गाँव दम तोड़ रहा था। जैसे किसी पक्षी की ग्रीवा मरोड़कर उसे भूमि पर पटक दिया जाय और उसके चौगिर्द चींटियाँ और मक्खियाँ आकर घेरा बना लें, ऐसी ही अवसान और अवसाद की मूर्ति यह गाँव था। हमने इस गाँव के घरों के किवाड़ों को दस्तक दी थी, फिर ज़ोर से उन्हें खटखटाया था, परन्तु भीतर से कहीं कोई आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी थी। एक जगह जब मैंने धक्का देकर दरवाज़े खोले और अन्दर दृष्टि दौड़ाई तो उसे उजाड़, चुपचाप पाया था। उसका आँगन खाली था, सर्वत्र सन्नाटा या निर्जीवता थी। यहाँ कभी मनुष्य रहते होंगे, इसका गुमान तक भी न होता था; इस भूत-भवन में आदम-बू तक नहीं थी।

मैंने शक्ति-भर पुकारा। कोई उत्तर न मिला। दूसरे किनारे पर कोठरियाँ थीं। एक का किवाड़ जरा खोलकर मैंने जब भीतर देखा तो चूहे-ही-चूहे और मक्खियों की भुन-भुन ही पाई। किवाड़ थोड़ा और खोलकर मैंने सिर अन्दर किया ही था कि चूहों का एक दल अचानक मुझ पर लपका और मक्खियों की फौज-की-फौज मुझ पर टूट पड़ी।

हिम्मत करके मैंने किवाड़ बिलकुल खोल दिया और एक कदम आगे बढ़ा। क्षण-भर के लिए वहाँ सन्नाटा छा गया तथा चूहे और मक्खियाँ मुझ अनाहूत अतिथि को आँखें फाड़-फाड़ कर ताकने लगीं। कोठरी में चूहों के बिल-ही-बिल दिखाई दे रहे थे और दीवारों पर भँभीरियों और भिड़ों के मिट्टी के बने घर। मकान की सभी दीवार मक्खियों की फौज के कारण काली हो रही थीं। ये चूहों के बिल और मक्खियों के काले जमघट कोठरी की काया पर अनगिनत नासूरों की

तरह उभरे हुए थे। सामने खाट पर मक्खियों का लगभग डेढ़ गज लम्बा छत्ता दीख पड़ा। आह! यह तो एक माता थी, जो बच्चे को गोदी से चिपकाये मरी पड़ी थी।

यह दृश्य देखकर मैं सुन्न रह गया था। दाँत जकड़े मैं वहाँ खड़ा-का-खड़ा रहा। इस बेसुधी में मुझे निराकार परमात्मा का बोध हो गया, मैंने ईश्वर को पा लिया था, मुझे लोक-परलोक के सिरजनहार की झलक दीख पड़ी। परन्तु मैंने यह अनुभव किया कि यह सर्वशक्तिमान, अदितिनन्दन, शिव-मंगल-दया-प्रेम का प्रतीक नहीं, वरन् यह मात्सर्य, निष्ठुरता और कोप का अतिशय रूप है। एक नये विश्वास ने, जो पहले विश्वास की भाँति सन्तोषप्रद और श्रद्धाजनक नहीं था, बल्कि हृदय दहला देने वाला था, मेरे रक्त में झनझनाहट पैदा कर दी। उसने यह शस्यश्यामला भूमि जो शत-शत वर्षों से सूख नहीं सकी थी, देखते-ही-देखते जला डाली थी। यहाँ के खेत हथेली की भाँति चटियल बंजर हो रहे थे। सर्वत्र भूख-ही-भूख विद्यमान थी। ऊपर आकाश जल रहा था, मानो वह क्रोध से गेरुआ हो रहा हो। मुझे अनुभव हुआ कि यह भगवान्, जो हर समय नाक-भौं चढ़ाकर लाल-पीले दोदे निकाल कर घृणा और क्रोध से फुंकारता ही रहता है, उसमें तो समस्त मानवता के प्रति तिरस्कार और उपहास भरा हुआ है। मिथ्या है दया, माया की मूर्ति, कहाँ है दयालुता का प्रतीक? यह तो कठोरता और अन्याय का प्रतिरूप है। अकाल और बाढ़ की भाँति यह ईश्वर तो मानव का शत्रु है।

मेरे बाहर निकलते ही मेरे साथी मुझसे इस प्रकार डरे थे मानो उस घर से उनका कोई परिचित नहीं, बल्कि पिशाच निकला है। मैंने किसी और को उसके भीतर नहीं जाने दिया था। यह मानव को दानव बना देने वाला दृश्य किसी और की आँखों के सामने आये इसे मैंने उचित नहीं समझा था।

तत्पश्चात् हम अपनी सामग्री उठाये, पट-पट खटखटाते, घर-घर हाँक लगाते गाँव-भर में घूमने लगे। गाँव-का-गाँव दम तोड़ रहा था। सोया पड़ा था बुद्ध भगवान्, जो हर हिन्दुस्तानी के उर के किसी अँधियारे कोने में चोर-सा बना छिपा रहता है।

सब घर खाली थे, सूने थे, उजड़े-पुजड़े थे। कहाँ गये यह लोग अपने घर-घाट छोड़कर। गाँव-का-गाँव आँखें बन्द कर चुका था; सब लोग मृत्यु से कहीं भाग गए प्रतीत होते थे। यहाँ चित्त पड़ा था हमारा एक गाँव, हमारे शरीर का एक अंग।

एक ओर से गाय की धीमी-सी डकराहट सुनाई दी और हम उस घर में पहुँचे। एक कोठरी के बाहर सूखे पत्तों और फूँस के ढेर के पास एक मनुष्य बैठा हुआ था। वह वृद्ध था या अधेड़, यह अनुमान लगा सकने में मैंने अपने-आपको सर्वथा असमर्थ पाया। बासी मूली के रंग-जैसे उसके चेहरे पर जो झुर्रियाँ पड़ी थीं वे मोटी-मोटी नहीं थीं, जैसा कि वृद्धावस्था में होता है; बल्कि बारीक-बारीक थीं। उसके पुट्ठे ढीले नहीं थे, न ही मांसल थे; और केश श्वेत नहीं थे, खिचड़ी भी नहीं, खसखसी से, जैसे उनका काला रंग फीका पड़ गया हो; ये अधिक आयु से पकने के कारण ऐसे नहीं लगते थे वरन् अतिशय पीड़ा से। इस पर भी उसके हाथों में शक्ति जान पड़ती थी और यह अनुभव होता था कि उसकी समस्त शक्ति और जीवन-पिपासा उन्हींमें आ सिमटी है। उसकी कलाइयाँ अभी सबल प्रतीत होती थीं और उसके कन्धे बेडौल उभरी हड्डियों के बावजूद शक्तिशाली जान पड़ते थे। सब-कुछ छिन जाने पर भी उसकी कर्म-शक्ति कम नहीं हुई थी। उसके पास पड़े सूखे पत्ते और फूँस कुछ जलाकर राख किये हुए थे और यह राख एक लोटे में पानी में घुली पड़ी थी। इससे मुझे यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं हुई कि इसी पानी में घुली राख पर उसका गुजरान हो रहा था।

हम उसके पास बैठ गए और उसके घर के अन्य लोगों के सम्बन्ध में उससे पूछने लगे। क्या वे कलकत्ता चले गए हैं। उसे अकेला छोड़-

कर ? वह खामोश रहा । क्या उन्हें अकाल ने ग्रस लिया है ? वह फिर चुप साधे रहा । हमने गाँव वालों के विषय में और वहाँ अकाल की स्थिति कितनी गम्भीर है, यह जानना चाहा ।

उसने कुछ ऊँ-आँ की और हमें भौंचक्का-सा देखकर एक साँस में कहने लगा : "यह तो शतपदी गोजर वाली बात है । वह निश्चिन्त होकर चहल-कदमी कर रहा था कि झींगुर ने उससे पूछा, गोजर दादा इस सौ पैरों से कैसे काम चलाते हो, कौन-सा पहले उठाते हो और कौन-सा पीछे । गोजर से आज तक किसी ने यह प्रश्न न पूछा था; वह सोचता रहा, सोचता रहा और ऐसी दुविधा में पड़ा कि उससे कोई पाँव भी न उठाया जा सका । तुम पढ़े-लिखे लोगों ने यों ही प्रश्न पूछ-पूछकर हमारा यह हाल किया है । और उसने एक ठहाका छोड़ा, जैसे फटा हुआ ढोल बजता है ।

हम में से एक ने उस पुरुष को कुछ खाने के लिए देना चाहा । मेरी ओर इशारा करके उसने कहा कि यह तो हिन्दुस्तानी है और मेरे साथी से पूछा कि तुम कौन बंगाली हो । उसने कहा, "हिन्दू ?" "वैद्य" "कौन वैद्य ? राजशाही वैद्य या बारीसाल वैद्य ?"—"बारीसाल वैद्य ।" "कौन गोत्र ?" यह प्रश्न-शृङ्खला चलती रही और मुझे दुनिया सिकुड़-सिकुड़ कर तुच्छ होती प्रतीत हुई । अपने-आप पर काबू न पाता हुआ मैं बीच में ही बोल उठा—"यह लो पंजाब का गेहूँ, ब्रासजील का चावल, आस्ट्रेलिया का दूध, कैनेडा के सूखे अण्डे, इंगलिस्तान, फ्रांस से आई हुई औषधियाँ, देख कहाँ-कहाँ से दुनिया आई है तेरे दुःख में शरीक होने । देख कितना बड़ा संसार बसता है तेरे इस कुए से बाहर ।

× × ×

यह साढ़े चार महीने पहले की बात है । अब हम फिर इस गाँव में आये थे । रिलीफ के लिए नहीं, वह अवस्था पार हो चुकी थी, वरन् आत्म-रक्षा-समितियाँ बनाकर अपने पाँव पर आप खड़ा होने का लोगों के पास सन्देश लेकर, जिससे फिर कभी अकाल उनकी तरफ आँख

उठाकर भी न देख सके। इस गाँव के पास ही रिलीफ कैम्प के खुल जाने के कारण अधिकतर लोग लौट आए थे। गाँव से कुछ ही दूर तालाब खोदने और सड़क बनाने का काम होने लगा था।

कई एक घरों से धुआँ उठने लगा था, और गाँव के लोग रिलीफ कैम्पों पर मज़दूरी से लौट रहे थे। ज्येष्ठ के अन्त में जो बरसात का पहला छींटा पड़ा करता है उसका इन्तजार हो रहा था और सब ग्रामीण असाढ़ी के धान की बोआई की फिक्र में थे।

अकाल ने लोगों के आकार-प्रकार को इस तरह बदल दिया था कि उनमें एक विचित्र प्रकार का सारूप्य-सा आ गया था। उनके चेहरे की बनावटें तो भिन्न-भिन्न ही थीं, किन्तु उनके मुँह और आँखों का तौर-तरीका और रंग-ढंग, उनकी भाव-भंगिमा एक-सी हो गई थी। उनके होंठ कुछ इस प्रकार उठे हुए थे मानो सीटी बजाना चाह रहे हों। उनकी आँखों की स्थिरता जाती रही थी और वे किसी चीज़ की खोज करती हुई लगती थीं। खाद्य-सामग्री पर वह पशुओं की तरह टूट पड़ते और भोजन इस तरह करते मानो यह उनके जीवन में अन्तिम अवसर है या उनके मुँह का कौर छीनने के लिए कोई उन पर झपटने ही वाला है।

अब उन सबकी भिन्नताएँ और विशेषताएँ फिर स्पष्ट हो आई थीं और प्रत्येक व्यक्ति की जो अपनी विशेषता होती है वह निखर आई थी। जीवन में जो स्नेह और स्निग्धता है वह पुनः पल्लवित होने लगी थी। परिवार फिर हरे-भरे होने लगे थे। कभी-कभी गाँव-गाँव भटकती हुई कोई माता मिल जाती, जिसका सारा परिवार अकाल ने ग्रस लिया था या कोई छोटा बालक, जो अपने माता-पिता को गाँव-गाँव खोज रहा हो। इससे अकाल की भीषणता की याद फिर ताजा हो जाती।

गाँव के बीच में कुआ था। हमने उससे सटे हुए मैदान में नीम के पेड़ के नीचे लोगों को एकत्र किया और उन्हें आत्म-रक्षा-समिति बनाने की आवश्यकता बताई। एक व्यक्ति ने मेरी ओर इशारा करते

हुए कहा कि यह हिन्दुस्तानी तो पहले भी हमारे गाँव में आया था। मैंने भी उसे पहचान लिया कि पिछली बार इस गाँव में इसी व्यक्ति से मेरी भेंट हुई थी। उस समय उसके अंग-अंग में पराजय का जो भाव प्रकट होता था वह अब नहीं था और न ही पर-मद-लुण्ठन के चिह्नों की तरह उसके चेहरे की झुर्रियाँ ही अब दिखाई देती थीं। उसकी आँखों का धुँधलापन भी अब जाता रहा था।

हमारे उन्हें बार-बार समझाने पर और आत्म-रक्षा-समिति बनाने का आग्रह करने पर उस व्यक्ति ने कुछ सहमति प्रकट की और हेच-पेच करता हुआ कहने लगा : "पहले कोई और बाबू लोग आये थे, वे कहते थे कांग्रेस कमेटियाँ बनाओ, फिर कुछ और भद्रपुरुष आये, वे कहते थे कृषक समितियाँ बनाओ, फिर और आये, वे कहते थे मुस्लिम लीग बनाओ; फिर कोई और आये थे वे कुछ और बनाने के लिए कहते थे। अब आप आत्म-रक्षा-समिति बनाने के लिए आग्रह कर रहे हैं। आप सब पढ़े-लिखे हैं, आपस में फैसला कर लें, हमें जैसी कहोगे वैसी सभा-समिति बना लेंगे।"

ज्येष्ठ के तीसरे पहर में कभी-कभी जो चारों ओर से हल्की-हल्की हवा बहने लगती है, वही चौबाई बहने लगी थी। नीम के वृक्ष के पुराने पत्ते लगभग झड़ चुके थे किन्तु अभी नये नहीं आए थे। चारों ओर से बहती हुई हवा एकदम तेज़ हो गई और उसमें बचे-खुचे पुराने पत्तों की सरसराहट मुझे हवा में पटपटाये जा रहे कोड़ों की ध्वनि की तरह जान पड़ी।

वहाँ पर एकत्रित लोगों को आत्म-रक्षा-समिति बनाने के लाभ जब फिर बताये गए तो उनमें से एक ने उस व्यक्ति और एक और अधेड़ की ओर संकेत करते हुए कहा कि ये दोनों ही अब खाली हैं, इनका कोई बाल-बच्चा नहीं रहा, इनको यह काम सौंप दो।

दूसरा व्यक्ति मेरे समीप था। सहानुभूति प्रकट करने के आशय से मैंने उससे उसके विनष्ट परिवार के बारे में कुछ जानना चाहा।

उसने बताया कि अकाल के दिनों में जब कुछ और न मिला तो उसके समझाने-बुझाने पर भी उसके लड़कों ने गीदड़ मारकर खा लिया और उसका गोश्त हज़्म न कर सकने के कारण वे पेचिश से दम तोड़ गए।

पहले व्यक्ति से जिससे पिछली बार भी इस गाँव में भेंट हुई थी मैंने प्रश्न किया कि उसकी सन्तान के साथ भी क्या कोई ऐसी ही घटना घटी थी।

उसकी आँखों में मेरे प्रति तिरस्कार उमड़ आया जैसे लबालब भरा हुआ बरतन एकदम छलक उठा हो। हूँकता हुआ वह पहले की तरह एक साँस में बोल उठा : "छि, उन्होंने गीदड़ को तो नहीं, हाँ गीदड़ ने उन्हें खाया था।" यह शब्द उसके कण्ठ से ऐसे फूटे थे, जैसे वहाँ हुडुक-सी बज उठी हो।

वहाँ पर एकत्रित लोगों में से एक ने हमें बताया कि जब अकाल के चिह्न दीखने लगे तो गाँव के जमींदार ने कृषकों से जमा किया हुआ तमाम अनाज छिपा लिया और उनको किसी भी भाव पर देने से इन्कार कर दिया। जब उसने इस अनाज को चोर बाज़ार में बेचने के लिए कलकत्ता से आढ़तियों को बुलाया तो गाँव वालों ने सभा की और सब मिलकर ज़मींदार से विनती करने गये कि कुछ अनाज गाँव में ही उठा दे। बहुत हाथ जोड़ने और पाँव पड़ने पर भी जमींदार न माना। उसी रात गाँव के युवकों ने जमींदार के खलिहान से कुछ अनाज उठाने की कोशिश भी की। शहर से आये हुए आढ़तियों के पास बन्दूकें थीं और गाँव के युवकों के पास केवल लाठियाँ। जो सात युवक वहाँ काम आये उनमें उस व्यक्ति के तीनों पुत्र भी थे।

जो विचार और भावनाएँ मेरे मन में अस्पष्ट-सी रहा करती थीं वे एकाएक साकार हो गईं। लोगों के निश्चेष्ट, निर्द्वन्द्व, दुर्भिक्षग्रस्त होने पर जो आत्म-ग्लानि मैं नित्य अनुभव करता रहा था उसने एक और ही रूप ले लिया, पहले से बहुत तिक्त, उग्र और अनुतापमय ग्लानि। जैसे अन्धेरे में बिजली कौंध गई हो इस तरह मुझ पर यह एकाएक

स्पष्ट हो गया कि जो राह हम इन लोगों को दिखाते रहे हैं, अकाल से मुक्त होने के लिए जो नीति हमने उन्हें सुझाई, वह उनसे कितनी बड़ी धोखादेही थी। हमने उन्हें संघर्ष से विमुख किया। उन्हें घृणा तक से दूर रहने की प्रेरणा दी। लाखों प्राणियों का भूख से तड़प-तड़प कर मरना तो हमने सहन किया, किन्तु खून की कहीं एक बूँद तक नहीं टपकने दी और अकाल के विरुद्ध उँगली तक नहीं उठने दी। यदि हमने संघर्ष का आवाहन किया होता, यदि हमने अकाल के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजाया होता तो इस व्यक्ति के तीन पुत्रों की भाँति बंगाल की छः करोड़ जनता इसका अभिवादन करती।

सहसा उस व्यक्ति के तीन पुत्र मेरे ध्यान में घूम गए और मेरे मन में यह आया कि जनता तो दरिया की तरह अपना रास्ता खुद बना लेती है, परन्तु हमने तो इनके तन-मन को ही बाँध दिया था।

आधी रात का सूरज

१

चाननमल भारतीय सेना में एन० सी० ओ० के पद पर था। वह युद्ध-काल में भरती हुआ था; और पाँच-छः वर्ष के विदेश और भारत के विभिन्न स्थानों के दाने-पानी के बाद अब उसकी नियुक्ति घर-गाँव के करीब ही रावलपिण्डी छावनी में हुई थी।

सैनिकों की एक स्पेशल रेलगाड़ी में वह रावलपिण्डी की ओर जा रहा था कि अचानक ऐसी घटना घटी कि जिससे उसके जीवन का मार्ग और उसके रहने एवं सोचने का ढंग ही बदल गया। सातवीं पंजाब रेजीमेण्ट के उसके यूनिट के अतिरिक्त उस फौजी स्पेशल में वायु-सेना के यूनिट भी थे।

दोपहरी चटक रही थी और सूर्य अभी ढलना ही शुरू हुआ था कि गाड़ी को लालामूसा स्टेशन के प्लेटफार्म से कुछ पहले रुकता हुआ देखकर वह बाहर झाँकने लगा। सिगनल तो गिरा हुआ था, किन्तु आगे रेल की पटरी पर लोग बैठे हुए थे। इञ्जन बहुत धीरे-धीरे रेंगता हुआ प्लेटफार्म के पास आकर रुक गया। अन्य पटरियों पर भी गाड़ियाँ रुकी पड़ी थीं तथा इञ्जन ठण्डे हुए खड़े थे। उन गाड़ियों के अनेक यात्री बाहर निकलकर कुतूहलवश किसी अद्भुत घटना को देख रहे थे। बहुत-से लोग खिड़कियों में से गरदन निकाले, बड़े अचरज से इधर-

उधर ताक-झाँक कर रहे थे। उसे मालूम हुआ कि रेल-मजदूरों की आधे दिन की सांकेतिक हड़ताल थी; वे सब गाड़ियाँ इसीलिए जहाँ की तहाँ ठप खड़ी थीं। साथ ही लाहौर को जाने वाली पेशावर एक्सप्रेस रुकी खड़ी थी। उसका इञ्जन धुआँ उँगल रहा था, किन्तु उसके कोयला डालने वाले और अन्य कामदार इञ्जन के सम्मुख लाइन पर धरना दिये बैठे थे। इञ्जन का गोरा ड्राइवर और गार्ड गाड़ी चलाने पर तुले हुए थे। उनके खयाल में और कोई गाड़ी चले न चले, एक्सप्रेस तो अवश्य ही चलनी चाहिए थी।

दिसम्बर के अन्तिम दिनों की पश्चिमी पंजाब की सरदी में भी ढलती दोपहरी की धूप व्याकुलता तथा कौतूहल के कारण बदन में चुनचुना रही थी और किसी अज्ञात अशुभ घटना के सामीप्य की कल्पना से वह पसीना-पसीना हो रहा था। हवा बन्द थी और प्लेट-फार्म के दूसरे छोर पर उगते हुए मौलश्री के वृक्ष की सुकुमार पत्तियाँ तक शान्त थीं। स्टेशन की पिछली ओर ईख के खेत थे। कुछ मुसाफिर गाड़ी के न चलने के कारण लापरवाही से उन्हें तोड़कर चूस रहे थे।

लोग छोटी-छोटी टोलियों में बँटे हुए आपस में बातें कर रहे थे। वह समय पाकिस्तान बनने से कुछ पहले की साम्प्रदायिकता से विषाक्त था और प्राय: ऐसी टोलियाँ हिन्दू और मुसलमानों की अलग-अलग हुआ करती थीं, किन्तु यहाँ ऐसा नहीं जान पड़ता था। ये टोलियाँ हिन्दू-सिखों और मुसलमानों की भिन्न-भिन्न न थीं, यद्यपि वे रेल-मजदूरों की तरह बिना किसी भेद-भाव के मिल-जुल नहीं रहे थे। हड़ताल के उस वातावरण में साम्प्रदायिक विवाद ध्यान का केन्द्र न रहने के कारण यहाँ आपसी बातचीत आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं की ओर ही मुड़-मुड़ जाती थी। कहीं युद्ध की समाप्ति के बाद होने वाली छँटनी पर रोष प्रकट हो रहा था तो कहीं किसी-न-किसी प्रकार अँग्रेजों को बाहर ढकेलकर शीघ्रातिशीघ्र आजादी प्राप्त करने पर जोर दिया जा रहा था। चाननमल के करीब की टोली का एक अधेड़ उम्र का

मुसलमान कह रहा था कि हम बड़ी-बड़ी बातों के बारे में सोचते हैं लेकिन छोटी चीजों की तरफ ध्यान ही नहीं देते। जब तक हम छोटी-से-छोटी चीज महीन-से-महीन सुई तक अपने देश में न बना सकेंगे, हमें आजादी नहीं मिल सकेगी।" एक मुसलमान युवक ने उसकी बात काटी : "तुम भी जिन्ना की तरह खोजे लगते हो. हमें सुइयाँ नहीं बम, गोले और बन्दूकें बनानी चाहिएँ।"

पेशावर एक्सप्रेस का इंजन जोर-जोर से बार-बार सीटियाँ बजा रहा था, लेकिन पटरी पर धरना दिये बैठे रेल-मजदूर टस-से-मस न होते। बल्कि स्टेशन के अन्य मजदूर भी आकर लाइन पर बैठते जा रहे थे। इंजन सीटियाँ बजाता, धुआँ छोड़ता और फिर बेबस होकर मौन होकर उन मुट्ठी-भर मजदूरों के आगे लाचार हो जाता। आधा पहर इसी तरह बीत गया और मजदूरों के चारों ओर लोगों का जमाव और घना होता गया।

इतने में ही एक लारी के उधर आने की आवाज सुनाई दी। सामान की गाड़ियाँ बाहर ले जाने के रास्ते से वह वहाँ प्लेटफार्म के पास आ गई। देखते-ही-देखते उसमें से सिपाही कूदकर बाहर निकलकर, कतार में आ खड़े हुए और राइफलें दाईं टाँग से लगाकर 'अटैनशन' हो गए।

भगदड़-सी मच गई। भीड़ छितर गई, किन्तु मजदूर रेल की पटरी पर ही जमे बैठे रहे। यही नहीं आस-पास खड़े हुए और भी कई मजदूर 'रेल का पहिया जाम करो' के नारे लगाते हुए अन्य मजदूरों के पास पटरी पर आ बैठे। इंजन ने धुआँ छोड़कर फिर लम्बी-लम्बी सीटियाँ बजाईं। गोरे इंजन-ड्राइवर ने बाहर झाँकते हुए हाथ से मजदूरों को लाइन से हट जाने का संकेत किया।

वातावरण का तनाव बहुत बढ़ गया था; यहाँ तक कि बचे हुए

लोगों की पलकों का झपकना तक रुक गया जान पड़ता था। रेल-मजदूरों के कन्धे तने हुए थे। इस सन्नाटे में उनकी साँस की धड़कन तक सुनाई दे रही थी। पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट ने स्टेशन-मास्टर से कुछ मिनट मशविरा किया, और फिर सिपाहियों को बन्दूकें कन्धों से लगाने का आदेश देकर उसने मज़दूरों को पाँच मिनट में तितर-बितर हो जाने का हुक्म दिया और कलाई छाती के बराबर उठाकर नजर घड़ी पर जमा ली।

'रेल का पहिया जाम करो' के दो-चार नारों के बाद मज़दूर और भी सुदृढ़ होकर वहाँ जमे रहे। इतने में वहाँ खड़े हुए हवाई सेना के मद्रासी कैडटों ने अपने साथियों को बुलाने के लिए जोर-जोर से पुकारा और देखते-ही-देखते तेरह-चौदह मद्रासी कैडट राइफलें कन्धों से जोड़कर सिपाहियों और रेलवे-मजदूरों के बीच में आ खड़े हुए।

हवा का तनाव और आतप और भी तेज़ हो गया। ऐसा अनुभव होने लगा कि जिस जगह वे खड़े थे वहाँ धरती गुब्बारे की तरह फट जायगी। मौन और निस्तब्धता इतनी गहरी और व्यापक हो रही थी कि स्टेशन से बाहर कहीं दूर कुत्तों के भौंकने की आवाज़ तोपों के गर्जन के समान लग रही थी और भाप भरे इंजन की शाँ-शाँ अत्यन्त प्रचण्ड अन्धड़ का आभास करा रही थी।

एक मद्रासी कैडट ने आगे बढ़कर पुलिस-अफ़सर से जोरदार लहजे में कुछ कहा और फिर उस अफ़सर के आदेश से सिपाहियों के कन्धों पर ढीली पड़ी बन्दूकें फिर टाँगों के साथ आ लगीं। स्टेशन-मास्टर के साथ कुछ देर कानाफूसी करने के बाद पुलिस-सुपरिन्टेण्डेण्ट ने उन्हें लारी में सवार किया और जिस रास्ते से वे आए थे उसीसे चले गए।

मौलश्री के वृक्ष की छाया लम्बी होती गई। धूप में काँटों की चुभन जाती रही थी। छलछलाते ठाठें मारते कुतूहल के स्थान पर अब हल्का-हल्का कोलाहल-सा रह गया था जिसमें अचरज से अधिक सांकेतिक हड़ताल के समाप्त होने की प्रतीक्षा थी। हड़ताली मजदूर उसी

तरह पटरी पर धरना दिये बैठे थे। सिपाहियों के उधर आने की खबर सुनकर किसानों के कई जत्थे भी आस-पास के ग्रामों से वहाँ आ गए थे। चाननमल को उन सबकी दृढ़ता और बन्धुता पर अचरज हो रहा था। विस्मय के इस भाव में वह अनमना-सा सोच रहा था कि कैसे कोई मनुष्य डर को इस प्रकार जीत सकता है। यह देखकर उसे और भी अचम्भा हो रहा था कि वहाँ पर खड़े हुए लोग एकदम साम्प्रदायिक विष से मुक्त हो गए हैं, मानो उन पर जादू की छड़ी फेरकर उन्हें और-से-और बना दिया गया हो। हिन्दू-सिख-मुसलमान यहाँ भिन्न-भिन्न टोलियों में खड़े हुए एक-दूसरे से घृणा की बातें नहीं कर रहे थे जैसा कि उन दिनों होता था, बल्कि मिले-जुले गिरोहों में खड़े हुए रोटी, काम-धन्धे और अंग्रेजों से आजादी हासिल करने के सवालों पर बातचीत कर रहे थे और उनका परस्पर-द्वेष भी रत्ती-भर बाकी नहीं रहा लगता था।

साँझ होने पर जब रेल-मजदूरों की आधे दिन की हड़ताल समाप्त हुई तो उनकी सैनिक स्पेशल आगे रावलपिंडी की ओर न जाकर वापिस लाहौर की ओर चली। इंजन पलटकर पीछे लग गया था। दस बजे रात को जब वे वजीराबाद स्टेशन पर पहुँचे तो वहाँ सशस्त्र सिपाही और सैनिक सैकड़ों की संख्या में तैनात थे। गाड़ी रुकते ही किसी पूर्व निश्चय के अनुसार उनके दस्ते प्रत्येक डिब्बे में घुस आए। उनमें से जिनके पास हथियार थे, ले लिये गए। वे सिपाही और फौजी डिब्बों में इस प्रकार बँटकर खड़े हो गए, मानो उन सब पर कड़ी नजर रखने का उन्हें आदेश है और वे उन्हें अपने स्थानों से हिलने-डुलने तक नहीं देंगे।

उस रात को तीसरे पहर जब गाड़ी ने लाहौर छावनी के स्टेशन में प्रवेश किया तो वहाँ पर वजीराबाद से भी कड़ा फौज का पहरा

था। गाड़ी से उतरकर प्रत्येक डिब्बे के आगे अलहदा-अलहदा कतार बनाने के हुक्म का पालन करने के बाद उनसे क्रमानुसार कुछ कवायद करवाई गई, फिर उन्हें चार-चार की कतारों में खड़ा करके 'हैण्डस् अप' का हुक्म मिला और इसी तरह हाथ ऊपर उठाए चार-चार की कतार में मार्च करते हुए वे एरिया कमाण्ड के मैदान में ला खड़े किये गए। उनके चारों तरफ़ कड़ा पहरा था।

उनमें से प्रत्येक को बुलाकर नाम-पता पूछा गया और किसी-किसी से एकाध प्रश्न भी। दिन चढ़ आने पर मद्रासी केडटों के अतिरिक्त सबको नौकरी से हटाये जाने की सूचना देकर अपना-अपना सामान लेकर वहाँ से चले जाने के लिए कहा गया।

उन दिनों लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम-दंगों का बहुत जोर था। उस दिन विशेषतः हर सड़क और बाजार में किसी युद्ध-क्षेत्र का दृश्य बना हुआ था। पिछली रात को मुसलमान रज़ाकारों ने श्मशान को अर्थी ले जाते हुए हिन्दुओं पर हमला करके अड़तालीस नर-नारियों की उस सोगी टोली का काम तमाम कर दिया था और उसका बदला लेने के लिए अगले दिन प्रातः हिन्दू-स्वयं-सेवक मुस्लिम अनाथालय के अन्दर बम फेंककर भाग गए थे।

चाननमल का बहनोई लाहौर के समीप ही मुगलपुरा रेलवे-वर्कशाप में कारीगर था; किन्तु वहाँ जाने के लिए शहर को पार करना पड़ता था। कुछ साथियों के साथ वह लाहौर स्टेशन तक जाने के लिए दो-तीन बाजार ही लाँघा था कि उसे बहुत दूर बलवाइयों का जत्था दिखाई दिया। रास्ते में उन्हें दो लाशें भी दिखाई दी थीं, एक बहुत वृद्ध मनुष्य की और दूसरे स्कूल में पढ़ने वाले किसी लड़के की। उन्होंने लाहौर छावनी के स्टेशन पर जाने का ही निश्चय किया। वहाँ से चाननमल रेलगाड़ी द्वारा मुगलपुरा पहुँचा और वर्कशाप में बहनोई

का नाम लेने पर उसे सुरक्षित उसके घर पहुँचा दिया गया।

चाननमल से जो घटनाएँ घटी थीं वह उनको समझ न पाया, यद्यपि उसके बहनोई ने उसे आश्वासन दिया और उसे समझाने की कुछ कोशिश भी की। चाननमल कभी मदरासी केडटों को बुरा-भला कहता, कभी हड़ताली रेल-मजदूरों को जली-कटी सुनाता और कभी अपनी किस्मत को कोसता। उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि अब वह क्या करे, कैसे जीविका चलाये।

उपद्रव शांत हो जाने तक लाहौर में काम-धन्धा मिलने की कोई आशा नहीं दीख पड़ती थी। चाननमल का बहनोई सन्तोखसिंह सिक्ख था और बागबानपुरा की मिली-जुली बस्ती में जहाँ वह रहता था सिक्खों को अधिक संकट में देखकर उसके साथी उसे रेलवे-मजदूरों की बस्ती में ले गए जहाँ उसकी लोकोशाप के एक मुसलमान मेट ने अपने दो कमरों में से एक कमरा उसे दे दिया था।

उस छोटी-सी बस्ती से बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं था। वहाँ कैद-सा चाननमल आठ-दस दिन में ही ऊब गया। वैसे भी गाँव गये हुए उसे वर्षों बीत चुके थे। यहाँ हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने की बजाय उसने यही बेहतर समझा कि गाँव जाकर ही इन दंगों के खत्म होने का इन्तजार करे, वहाँ कम-से-कम इस तरह बन्दी तो नहीं रहना पड़ेगा।

२

चाननमल के गाँव चक-समुन्दरी में हिन्दुओं के केवल छः घर थे, बाकी के सौ से कुछ ऊपर परिवार राजपूत मुसलमानों के थे। चार-पाँच को छोड़कर ये सब छोटे काश्तकार या खेत-मजदूर थे। छः-के-छः हिन्दू घराने खत्रियों के थे, जो अपनी प्रथानुसार सबसे बड़े पुत्र के केश रखकर उसे सिख बनाया करते थे या जैसा कि वे कहा करते थे उसे 'दसवीं पादशाही का सिंह' सजाया करते थे। १९२४ के हिन्दू-मुस्लिम-दंगों के बाद उस इलाके के मुसलमान अपने देहातों में सिक्खों का रहना प्रायः पसन्द नहीं करते थे। उन छः परिवारों में जो सिक्ख थे वे उन दंगों के कारण गाँव छोड़कर चले गए थे और कहीं दूसरी जगह जा बसे थे। किन्तु इसके पश्चात् ये छः परिवार पुत्र को सिंह सजाना सम्भव न पाकर अपनी पहली पुत्री का विवाह सिख घर में करने लगे थे। गाँव में एक धर्मशाला थी; जहाँ राम, कृष्ण, महावीर, दुर्गा भवानी आदि के चित्रों से सज्जित एक बड़े कमरे में गुरु ग्रन्थ की चौकी सजी हुई थी, जिसका सवेरे-शाम नित्य प्रकाश होता। आर्यसमाजियों द्वारा सिख-गुरुओं के दोषण और अकालियों द्वारा देवी-देवताओं की मूर्तियों-चित्रों के गुरुद्वारों से बहिष्कार का यहाँ कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा था।

पश्चिमी पंजाब के इस झेलम ज़िले में मुसलमानों की आबादी नब्बे प्रतिशत के लगभग थी और चक-समुन्दरी के आस-पास के सब गाँव मुसलमानों के थे। किन्तु मध्य पंजाब के नगरों के विषाक्त वातावरण का अभी तक यहाँ प्रभाव नहीं पड़ा था और आपसी मेल-जोल और भाईचारे में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। किसी-किसी हिन्दू या मुसलमान जमींदार ने नेजे, कृपाणें आदि जमा कर लिये थे परन्तु एक-दूसरे की नेकनीयती पर किसी को सन्देह नहीं हो रहा था।

समाचार-पत्रों में उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम-दंगों के अतिरिक्त और कोई खबर नहीं छपती थी। हिन्दू-सिखों के अखबार मुसलमानों के विरुद्ध विष-वमन करते और मुसलमानों के हिन्दू-सिखों के प्रति घृणा और उत्तेजना फैलाते। समाचार-पत्र यहाँ डेढ़ दिन बाद पहुँचते थे। ये पत्र प्रायः शाम को चौपाल में आते थे, जहाँ हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के अखबार पढ़ते, विचार-विनिमय और वाद-विवाद होता, गरमा-गरम बहसें छिड़तीं, कभी-कभाक तू-तू मैं-मैं की भी नौबत आ जाती, किन्तु इन अखबारों की परस्पर-विरोधी खबरों में वे प्रायः सचाई ढूँढने की कोशिश करते। इन समाचारों से पुराने मेल-मिलाप कहीं-कहीं फीके तो पड़ गए थे, परन्तु यहाँ किसी प्रकार भी मुसलमानों ने आटे में नमक के बराबर हिन्दुओं से आँखें नहीं फेरी थीं।

चाननमल के चाचा के यहाँ आढ़त और लेन-देन का धन्धा था। आस-पास कई मण्डियाँ खुल जाने के कारण उनका आढ़त का काम बहुत घट गया था। युद्धकालीन महँगाई से जमींदारों के हाथ रंगे जाने के कारण लेन-देन का धन्धा भी अब न होने के ही बराबर था। जमीन जो उसके पास थी वह भी अधिकतर ऊसर ही थी और खेती-बाड़ी में वैसे भी उसे रुचि न थी। इसलिए उसने ग्रामीण आवश्यकता की छोटी-बड़ी चीजों का बनज शुरू कर लिया था।

इस संयुक्त परिवार में, जिसका सर्वेसर्वा उसका चाचा था, चाननमल इस बार हिल-मिल न सका। वह छोटा ही था कि उसके पिता का देहान्त हो गया था। वे सगे दो भाई-बहन ही थे। बहन का विवाह हो चुका था और वह भी स्वयं वर्षों से बाहर रह रहा था। गत वर्ष उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया था और यहाँ चाननमल के लिए कोई आकर्षण न रह गया था।

उसके चाचा का अपना बहुत बड़ा कुटुम्ब था। पहली पत्नी आठवाँ

बच्चा जनती हुई परलोक सिधार गई थी। दूसरी शादी से भी चार बच्चे थे। बहुत हाथ-पाँव मारने पर भी उसे केवल खाने के लिए भर-पेट दाने मिल पाते। जवान चाची के कारण भी चाननमल को वहाँ रहना बहुत अच्छा न लगा। उसका चाचा केवल उस पर ही नहीं, बल्कि पहली पत्नी के पुत्रों पर भी कड़ी नज़र रखता था। उसकी यह चाची लाजवन्ती तीस वर्ष की होने को थी। चार बच्चे जनने पर भी उसके चेहरे का गठन और कैशोर्य ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। आँखों के चांचल्य और स्तनों के भरपूर होने के कारण वह विवाहिता तो लगती थी, किन्तु कोई भी उसकी आयु को बीस से अधिक नहीं आँक सकता था। किसानों की स्त्रियाँ तो खेतों में मेहनत करने के कारण शादी के शीघ्र ही बाद अपनी कोमलता खो बैठती हैं। उन्हें लाजवन्ती के अक्षय यौवन और सुकुमारता पर अचरज भी होता और ईर्ष्या भी। उसका मायका कुञ्जाह कस्बे में था और इस गाँव वाले उसे देखकर प्रचलित कहावत 'दातुन फलाह की और रन (स्त्री) कुञ्जाह की' सुना दिया करते। किसी कारज के अवसर पर जब स्त्रियाँ उसे छेड़ने के लिए गातीं : 'खत्रैनाँ दी रीब नियारी, छः पुत्त जमके लगन कुआरी' तो लाजवन्ती भी छनक-मनक करती हुई बड़े रसीले सुर में गाने लग जाती : 'छल्ला रंग बरंगी; कालियाँ नूँ खबर करो; गोरा रंग डब्बियाँ विच लाया फरंगी।'

लाजवन्ती की नुकीली नाक और गोल-मटोल गालों पर बड़ी-बड़ी आँखें बहुत चालाक और चौकस थीं और उसने उनके द्वारा चाननमल को यह जताने में देर न लगाई कि उसका वहाँ आना और उस संयुक्त परिवार में किसी प्रकार का अपना हिस्सा या स्थान जताना उसे पसन्द नहीं। वैसे भी चाननमल का गाँव में रहने का चाव दो-तीन सप्ताहों में ही जाता रहा था। किन्तु वह जब कभी बहनोई को काम-धन्धे के लिए लाहौर आने को लिखता वह उसे दंगे बन्द होने तक गाँव में ही टिके रहने का परामर्श देता, परन्तु साम्प्रदायिक झगड़ों की यह आग मन्द पड़ने की बजाय दिन-ब-दिन और धधकती ही जा रही थी।

चाननमल अभी यह सोच ही रहा था कि गाँव में इस तरह कितने दिन पड़ा रहेगा कि अचानक इस इलाके में अराजकता फैल गई। ऐसे साम्प्रदायिक बलवे मच उठे जिनकी लाहौर अमृतसर में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी और इन देहाती इलाकों में दो-दो चार-चार करके बिखरे हुए हिन्दू-सिख-परिवारों को तहस-नहस किया जाने लगा।

यह मार्च १९४७ के शुरू की बात है। पहले रावलपिंडी शहर में फिसाद हुए, जहाँ हिन्दू-सिखों का जोर रहा। वहाँ की बातों का बतंगड़ बनाकर जब मुस्लिम लीग वालों ने उन्हें आस-पास के देहात में फैलाया तो आटे में नमक के बराबर यहाँ के हिन्दू-सिखों को जान के लाले पड़ गए। ऐसा प्रतीत होता था कि मुसलमानों के सशस्त्र जत्थे-के-जत्थे दानवों की भाँति एकाएक धरती में से फूट निकले हों।

गाँव-गाँव घूमकर हिन्दुओं के घर लूटते-जलाते सशस्त्र जत्थे उस गाँव को सारे-का-सारा मुसलमानों का समझकर पहले दो दिन तो हो-हल्ला मचाते हुए पास से गुज़र गए। देखते-ही-देखते उनके बहुत-से मुसलमान पड़ोसियों की आँखों से भी मुरौवत जाती रही। समाचार-पत्र आने बन्द हो गए थे और तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी थीं। वहाँ से तेरह कोस दूर चक फेरियाँ की जब उन्हें खबर मिली कि वहाँ रातो-रात तमाम हिन्दू-सिखों को कत्ल कर दिया गया है, तो उन सबका दिल दहल गया। उस गाँव के हिन्दुओं ने फैसला किया कि कीमती सामान और गुप-चुप जमा किये गए हथियार लेकर वे धर्मशाला में एकत्र हो जायँ। उन छः परिवारों के अस्सी से कुछ अधिक जीवों ने उस गुरुस्थान की चार दीवारी में बन्द होकर मोर्चे बना लिए। रात को दो होशियार युवकों को आस-पास के इलाके में चक्कर लगाकर बचाव के लिए कोई रास्ता मालूम करने के लिए भेजा गया।

हिन्दुओं के मुसलमान दोस्तों और पड़ोसियों ने उनके लिए भोजन

आदि भेजा, किन्तु यह किसी को खाने न दिया गया। कोई चेतावनी देता कि इसमें जहर मिला है, कोई कहता कि जरूर पानी पर कलमा पढ़कर आटा गूँदा गया होगा। कुछ समझदार व्यक्ति उन्हें समझाते हुए रोटियाँ चखकर दिखलाते, किन्तु उन्हें दुतकारने वालों की संख्या कहीं अधिक थी।

अगले दिन तीसरे पहर धर्मशाला से डेढ़-दो सौ गज परे के मैदान में मुसलमानों का मजमा आकर रुक गया और नारे लगाने लगा। सबका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा और हाथ-पाँव फूल गए। उनके पास कुछ नेजे, कृपाणें और चार बन्दूकें थीं। चाननमल ने दस-बारह नौजवानों को तैयार किया। एक बन्दूक आप ली, तीन औरों को दीं और भीड़ की ओर दीवार की ओट लेकर वे स्थिति की जाँच-परख करने लगे। उसने नेजे और कृपाणें आदि देकर और युवकों को उपयुक्त स्थानों पर खड़ा किया और बाकी लोगों को अन्दर की दीवारें तोड़कर ईंटें एकत्र करने को कहा।

भीड़ के नारे ऊँचे होते देखकर सरदार सेवादास ने सुझाव दिया कि वह स्वयं जाकर उन्हें समझा-बुझाकर लौट जाने की प्रेरणा देगा। सेवादास उस गाँव का सबसे वृद्ध और पूज्य व्यक्ति था। गाँव के सब छोटे-बड़े मुसलमान उसे आदर की दृष्टि से देखते और उसे ताया-चाचा आदि कहकर सम्बोधित किया करते थे। इन ग्रामों में सब पगड़ी बाँधा करते थे। टोपी पहनने का इनमें रिवाज न था। सेवादास ने जब से दाढ़ी रख ली थी, लोग उसे सरदार जी या बाबाजी कहकर भी पुकारने लगे थे।

भीड़ के पास जाकर बाबा सेवादास ने दाढ़ी को छुआ, मानो उन्हें वह अपनी बुजुर्गी जता रहा हो। उनके आगे हाथ बाँधकर उसने घुटने टेक दिए। ठसकर खड़े लोगों की कतार-पर-कतार लगी थी। अकस्मात् अगली कतार में से पुलिस की वर्दी पहने हुए एक युवक आगे बढ़ा। उसने बाबा सेवादास की झुकी हुई गरदन को ठोकर लगाकर

ऊँचा किया और उसकी छाती के बीच में नेजा घोंप दिया।

धर्मशाला में वे सब सुन्न-से रह गए और मुसलमानों के मजमे पर भी कुछ क्षणों के लिए सन्नाटा छा गया। फिर भीड़ चीरती हुई एक औरत सेवादास के ठण्डे हो रहे शरीर के पास आई और वहाँ पर जमा हुए लोगों की ओर इस तरह हाथ उठा-उठाकर कुछ कहने लगी जैसे उन पर लानत भेज रही है। फिर वह बाबा सेवादास के लहू से लथ-पथ शरीर को छू-छूकर विलाप करने लगी। वह स्त्री डील-डौल से जैतों लगती थी। नेजे वाले उसी व्यक्ति ने जैतों को घसीटकर एक ओर किया, एक साथी से बन्दूक पकड़कर ऊपर उठाई और वह लोगों को ललकारता हुआ धर्मशाला की ओर बढ़ने लगा। पन्द्रह-बीस आदमी, जिनके हाथ में नेजे थे, उसके पीछे-पीछे हो लिए। धर्मशाला की फ़सील के ऊपर से झाँकने वाले लोग सहमकर नीचे हो गए। नेजे वाले मुसलमान कुछ ही आगे बढ़े थे कि चाननमल के इशारे पर उन चारों युवकों ने बारी-बारी से फ़ायर किये और मुसलमान मजमे को तितर-बितर होने में देर न लगी।

उन सबको पूरा विश्वास था कि मुसलमान अब खूब तैयारी के बाद उन पर आक्रमण करेंगे। कई तो इतने भयभीत हो रहे थे कि 'सत्यनाम श्री वाहगुरू' के जाप के अतिरिक्त उनसे कुछ नहीं हो रहा था; परन्तु अधिकतर लोग कमर कसकर मरने-मारने के लिए तैयार हो गए। चाननमल ने सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए उन्हें भिन्न-भिन्न काम सौंपे।

साँझ होने पर गाँव की मसजिद से नारे सुनाई दिये। धर्मशाला में एक बड़ा कुआँ था। चाननमल और अन्य नौजवानों ने जवान स्त्रियों और किशोरियों को कुए में कूद जाने की प्रेरणा दी और जो अनमनी थीं उनमें से कुछ को उन्होंने जबरदस्ती कुए में ढकेल दिया। कुछ लोगों ने बहुत समझाया कि कुए में कूदने के लिए तो कुछ मिनट भर ही का समय पर्याप्त है, जब हमलावर पास आएँ और जरूरत पड़े तो ऐसा कर

लिया जाय, पर उनकी किसी ने न सुनी। लाजवन्ती वहाँ भी खूब साफ-सुथरे कपड़े पहनकर और सज-धजकर आई थी। हमेशा की तरह उसने अपने घुँघराले बालों में खूब बनाकर कंघी-चोटी कर रखी थी और उन्हें चिड़ियों और क्लिपों से सजाया हुआ था। भारी गठे हुए नितम्ब और भरपूर छातियों को मटकाते हुए उसका वहाँ इधर-उधर टामक-टोइयाँ मारना उन्हें अच्छा न लगा। किसी ने उसको भी कुए में ढकेले जाने का प्रस्ताव किया। उसके बड़े पुत्र चुपचाप एक ओर खड़े थे। घर का सारा धन-जेवर लाजवन्ती ने अपनी कुर्ती के अन्दर सी रखा था। चाननमल का चचा 'ज़रा रुको, ज़रा रुको' पुकारता ही रहा कि उसे कुए में धकेल दिया गया।

मसजिद से नारों की आवाज़ें आती रहीं, कभी मन्द कभी ऊँची। वे सब अपने-अपने मोर्चे पर मुस्तैद रहे। वे अब डर के स्थान पर साहस और वीरता अनुभव करने लगे थे।

जिन दो व्यक्तियों को आस-पास घूमकर बचाव के लिए राह ढूँढ़ने के लिए भेजा गया था वे रात के दस बजे के करीब लौट आए। उन्होंने बताया कि खयोड़ा ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पूर्ण शान्ति है, आस-पास के इलाकों के हिन्दू-सिख वहाँ एकत्र हो रहे हैं और नमक की खानों के मजदूरों ने उनके निवास, भोजन और सुरक्षा के लिए पूरा-पूरा प्रबन्ध कर रखा है। खानों के मजदूर अधिकतर मुसलमान थे, इसलिए उन पर उन्हें भरोसा नहीं था। किन्तु और कोई उपाय न सूझा। खयोड़ा वहाँ से उन्नीस मील की दूरी पर था। पौ फटने से पहले वहाँ पहुँचने के लिए तुरत चलना जरूरी था। पहले उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहब और देवी-देवताओं की तस्वीरों के सम्मुख प्रार्थना की, फिर उन्हें कुए में उतारा, इसलिए कि बाद में उनका अपमान न हो।

कृष्ण पक्ष की तेरहवीं तिथि थी। गहन अँधेरे में वे छोटी-छोटी टोलियाँ बनाकर गाँव से बाहर निकले और बताये गए रास्ते से पके हुए गेहूँ के खेतों में छिप-छिपकर दिन चढ़ने से पहले ही खयोड़ा पहुँच गए।

चाननमल अन्तिम टोली में था। जब वह गाँव से निकला तो उस समय मसजिद में जलसा हो रहा था और किसी के भाषण के मन्द स्वर के बीच-बीच नारों की आवाजें भी सुनाई दे रही थीं।

ख्योड़ा के मजदूरों में कुछेक हिन्दू और सिख भी थे। वे सब उनकी पूरी तरह रक्षा कर रहे थे और उनको सुख और सान्त्वना देने के लिए उनसे जो-कुछ भी बन सकता था कर रहे थे। किन्तु जिस परि-स्थिति से गुजरकर वे वहाँ आए थे उसके कारण उन सबके दिल धड़क रहे थे। चाननमल का चचा तो सदा ही यह कहता रहता कि मुसलमान की जात पर क्या भरोसा, वे तो चचेरी, ममेरी, मौसेरी बहनों तक से निकाह कर लेते हैं।

तीसरे दिन जब वहाँ चौदहवीं पंजाब रेजीमेंट का एक दस्ता आया तब उनकी जान-में-जान आई। चाननमल का चचा स्थिति सुधरने पर गाँव लौटना चाहता था। उसके अतिरिक्त घर के सब आदमी रावल-पिंडी के शरणार्थी-शिविर में आ गए। वहाँ से चाननमल बहनोई के पास लाहौर चला आया, यह सोचकर कि शायद मुगलपुरा की वर्कशाप में ही उसे कोई रोजगार मिल जाय।

३

लाहौर तो साम्प्रदायिक उपद्रवों का केन्द्र था ही; अब पश्चिमी पंजाब की घटनाओं ने इस आग पर तेल का काम किया। वैसे भी पाकिस्तान का बनना निश्चित हो जाने के कारण ये दंगे अब अव्यवस्थित रूप से नहीं हो रहे थे। दोनों ही दल पूरी-पूरी तैयारी करके एक-दूसरे को अपना जोर दिखाने पर तुले हुए थे। इसके लिए लाखों रुपये प्रतिदिन खर्च किये जा रहे थे। इस अपार धन को एकत्र करने या

शस्त्रादि जुटाने में उपद्रवियों को जरा भी कठिनाई नहीं होती दीखती थी। शहर-भर में साम्प्रदायिकता की ज्वाला धधक रही थी, केवल मुगलपुरा के निकटवर्ती भाग ही इसकी लपेट से बचे हुए थे। रजाकारों, स्वयंसेवकों और अकाल-सैनिकों के भरसक प्रयत्नों पर भी रेलवे और अन्य कारखानों के मजदूर उनके हाथ में न खेले, उनकी हर एक शरारत को काटते रहे और परस्पर-द्वेष के इस अन्धड़ में भी उनके पाँव न उखड़े।

चाननमल को वहाँ का विषरहित वातावरण बहुत अखरा, उसके भीतर इतना जहर भर गया था। जो घटनाएँ उस पर घटी थीं कुछ अतिशयोक्ति के साथ उसने बहनोई को सुनाईं, जिसने उसे इन झगड़ों के मूल कारण को समझाने की बहुत कोशिश की, पर उस पर कुछ इतना गहरा रंग चढ़ा था कि जो मिटाये न मिटता था। यह उसकी बहन तक को खटकता था।

विवाह के बाद उसकी बहन में जो परिवर्तन हुए थे, चाननमल उन्हें कोशिश करने पर भी समझ न पाता। पहले वह दुबली-पतली शरमीली हुआ करती थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें निर्मलता और स्थिरता लिये हुए होती थीं, और उसका स्वभाव बहुत कोमल था। देखने में अच्छी होने पर भी सीधी-सादी और शीतल-स्वभाव की होने के कारण वह सुन्दरी नहीं लगती थी। अपनी ओढ़नी में आधा चेहरा छिपाये, मुँह लटकाए काम-धन्धे में जुटी रहती थी।

शादी के बाद उसकी बहन का शरीर भर आया था। उसके स्वभाव में गम्भीरता आ गई थी। शहर में रहने से पहल-पहल उसमें स्वार्थ भाव उत्पन्न हो गया था। उसे डर लगा रहता कि उसका पति जीवन के संघर्ष में टिक नहीं सकेगा। उसे हर तरफ आपाधापी-सी मची जान पड़ती थी और ऐसा लगता कि हर कोई उसके पति को छल रहा है और उनके मुँह का कौर छीनने की ताक में है।

दो-तीन साल बाद चाननमल ने बहन में एक और परिवर्तन देखा। उसके शरीर में ही नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व में भी बल और दृढ़ता आ गई थी। वह फिर शील स्वभाव हो गई थी, किन्तु अब उसकी आँखें बहुत सचेत रहने लगी थीं, वह सीधी होकर गरदन उठाकर बैठने-चलने लगी थी और उसके हाथ-पाँव में चुस्ती आ गई थी। वह आस-पास के लोगों और पति के संगी-साथियों में विश्वास और आस्था अनुभव करने लगी थी जैसा कि विचारों और लक्ष्यों के ऐक्य से ही होता है।

बहन के स्वभाव से लाज-संकोच का इस प्रकार जाते रहना चाननमल को फूटी आँखों भी नहीं भाया। बहन ने उसे बहुत समझाया कि मुसलमानों में भी अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग होते हैं, और जो अत्याचार मुसलमानों ने हिन्दुओं से उनके गाँव में किये, वैसे हिन्दुओं ने भी मुसलमानों पर अनेक स्थानों पर ढाये हैं। इसमें दोष हिन्दू-मुसलमानों का नहीं, परिस्थितियों का है और उनका जो इनको जान-बूझकर उत्पन्न कर रहे हैं। चाननमल यही रटता रहता कि मुसलमान, जिनको वह इस समय आँख की पुतली बनाये हुए है, एक दिन उसके बच्चों के टुकड़े-टुकड़े करने और उसकी पत उतारने में रत्ती-भर भी संकोच नहीं करेंगे।

चाननमल लम्बा-तगड़ा था। उसके चौड़े जवानी-भरे कन्धे थे और भारी गमकदार आवाज़ थी। उसकी आँखें जिन पर घनी भौंहें छाई हुई थीं, रौबदार और पैनी तकन लिये हुए रहतीं। उसके सूरज ताये चेहरे पर मोटी-मोटी मूँछें थीं। किन्तु अब घृणा के आवेश से उसकी भौंहें और मूँछें खड़ी-खड़ी और उसकी आखें जलन लिये रहतीं। उसकी आकृति तक पर पुरानी काँसी की आभा छा गई थी। कई बार तो चाननमल की बहन तक को उससे डर लगने लग जाता।

४

रावलपिंडी में कालिज के दिनों के अपने एक सहपाठी रामकुमार से चाननमल की एक दिन अकस्मात् भेंट हो गई। वह स्वयं-सेवक-संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से था। उसने चाननमल से पश्चिमी पंजाब के उपद्रव का वृत्तान्त सुना, तो उसे अखबार में छपने के लिए एक बयान लिखने के लिए कहा। चाननमल ने बढ़ा-चढ़ाकर उन घटनाओं को उर्दू में लिखा और उसका मित्र उसे दैनिक 'पंजाब केसरी' के दफ़्तर में ले गया। उसके दस पन्ने के वृत्तान्त को अस्सी-नब्बे पन्नों में बढ़ाकर उस पत्र के सम्पादक और मालिक महाशय जयकृष्ण ने उसे 'एक अनुभवी हिन्दू की आपबीती' के शीर्षक में क्रमशः प्रकाशित करना शुरू किया। महाशयजी ने दैनिक 'पंजाब केसरी' को लाला लाजपतराय की पुण्य-स्मृति में स्थापित किया था। वह एक प्रसिद्ध 'देश-भक्त' अखबार के 'देशभक्त' सम्पादक माने जाते थे और पुराने कांग्रेस नेता थे। महाशयजी को एक स्थानीय संवाददाता की जरूरत थी, जो स्वयंसेवक संघ के बढ़ते हुए सुरक्षा-कार्यों के समाचार लाये। महाशयजी को जब मालूम हुआ कि चाननमल काम-धन्धे की खोज में है तो उन्होंने उसे यह काम सौंप दिया। पंजाबी में केसरी का प्रचलित अर्थ केसरिया रंग होता है। अतएव उर्दू के उस दैनिक 'पंजाब केसरी' के हिन्दी नाम का अर्थ चाननमल और सम्पादकीय स्टाफ के अन्य लोग यही जानते थे कि सारे पंजाब में केसरिया यानी भगवे रंग के झंडे का बोल-बाला होना चाहिए। यही उनकी राष्ट्रीयता और देश-प्रेम का चरम लक्ष्य था।

चाननमल अपने मित्र के साथ शहर में रहने लगा। वह सूतर मंडी में एक मकान के निचले हिस्से में रह रहा था। उस मित्र द्वारा उसका स्वयंसेवक संघ से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। जब संघ वालों को यह मालूम हुआ कि वह भारतीय सेना में रह चुका है तो वे उसे अपने किसी पुराने सम्पर्क द्वारा शस्त्रादि जुटाने के लिए प्रेरित करने लगे। इस

इलाके के स्वयंसेवकों में दस्ती-बमों के वितरण का केन्द्र 'पंजाब केसरी' का दफ़्तर था। महाशय जयकृष्ण, जो अपने किसी कर्मचारी को एक रुपया भी अधिक देने के लिए कभी तैयार न होते थे, इन बमों आदि के लिए थैली खोले हुए थे। दफ़्तर में आम कहा जाता था कि इस काम के लिए जितना चन्दा वह जमा कर रहे थे उसका चौथाई भी खर्च नहीं करते थे।

इतने में जुलाई १९४७ आधा बीत गया और भारत के विभाजन में एक महीना ही रह गया। लाहौर पाकिस्तान में जाय या भारत में रहे यह अभी अनिश्चित था। इसके लिए बाउंड्री कमीशन के फ़ैसले की बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा हो रही थी और अब स्वयंसेवक, अकाली-सैनिक और रज़ाकार नेजे-तलवारों के साथ-साथ बन्दूकें और स्टेनगनें भी जमा करने लगे थे। बाउंड्री फोर्स के गोरे फौजियों से ये अधिक कठिनाई के बिना प्राप्त हो रहे बताये जाते थे। लाहौर छावनी के शस्त्रागार को आग लगी और शहर भर में अफ़वाह फैल गई कि आग लगाने से पूर्व तमाम राइफलें आदि उड़ा ली गई हैं, कोई कहता कि यह मुसलमान फौजियों ने किया, कोई कहता सिखों ने। इससे शस्त्र एकत्र करने की होड़ और भी तेज हो गई।

चाननमल को स्वयंसेवक संघ के एक संचालक ने आदेश दिया कि हर दूसरे दिन उसे अम्बाला छावनी जाना होगा जहाँ से बताये गए पते पर दो हज़ार रुपये की एक दर्जन राइफलें खरीदकर बड़ी सावधानी से लाहौर लानी होंगी।

पता अम्बाला छावनी के पास पुलिस चौकी के एक स्टाफ-क्वार्टर का था। जिस आदमी का नाम पता उसके पास था वह बताये गए समय पर वहाँ इन्तज़ार कर रहा था। दो हज़ार रुपये देकर उसने राइफलों से भरा हुआ एक ट्रंक लिया। उसे टाँगे में रखकर चाननमल

अम्बाला शहर को रवाना हुआ। अम्बाला शहर के स्टेशन पर अधिक भीड़ होने के कारण उसने वहाँ से लाहौर के लिए गाड़ी पकड़ना बेहतर समझा। रास्ते में उसे लगा कि दो सिपाही, जिन्हें उसने वर्दी पहने पुलिस चौकी में देखा था, उसका पीछा कर रहे हैं। उसका माथा ठनका। स्टेशन पर भी उन्हें देखकर वह सावधान हो गया और ट्रंक किसी और मुसाफिर के सामान के पास रखकर उसके आस-पास टहलने लगा। उन दो वर्दी-रहित सिपाहियों को उसने रेलवे-पुलिस के सिपाहियों से बातें करते हुए देखा और वह सोच ही रहा था कि इस फंदे से कैसे जान बचाये कि रेलवे पुलिस का एक सिपाही ट्रंक को उठा, हिलाकर देखने लगा और बिना वर्दी के सिपाही, जो अम्बाला छावनी से उसका पीछा कर रहे थे, उसके करीब आ खड़े हुए। चाननमल चहलकदमी करता हुआ जरा दूर हट गया। इतने में रेलवे-पुलिस के दो और सिपाही ट्रंक के पास आ खड़े हुए। उन्हें ट्रंक के बारे में पूछ-ताछ करते हुए देखकर चाननमल वहाँ से खिसक गया, दूसरे प्लेटफार्म पर खड़ी पटियाला को जाने वाली गाड़ी के एक डिब्बे में जा चढ़ा और फिर पीछे से उतरकर उसी गाड़ी के किसी और डिब्बे में जा बैठा।

जब वह पटियाला से फीरोजपुर के रास्ते लाहौर पहुँचा तो स्वयंसेवक संघ वालों ने उसकी एक न मानी और उस पर रुपये गबन करने का इलजाम लगाया। उसने कसमें खाईं पर किसी ने उसका विश्वास न किया। सब संघ वाले उसे तिरस्कार और सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। रामकुमार ने उसे चेतावनी दी कि संघ में रुपये की बेईमानी बहुत बड़ा अपराध समझा जाता है। उसे यह आशंका थी कि वे अब उसकी जान के पीछे हाथ धोकर पड़ जायँगे। इसलिए बात आई-गई होने तक उसे इधर नहीं आना चाहिए।

चाननमल इससे भौंचक्का रह गया। इससे उसके स्वाभिमान को ही नहीं उसकी आत्मा को ठेस पहुँची। रामकुमार से संगत द्वारा जो कोई भी उसे मिला था वह किसी और को कभी ईमानदार और नेक-

नीयत नहीं समझता था, यद्यपि वे सब धर्म के नाम की दुहाई देते रहते। किन्तु उसे इस बात की कल्पना भी न थी कि उस पर इस प्रकार अविश्वास किया जायगा और दो हजार की रकम के लिए उसकी जान पर बन आयगी। उसे स्वप्न में भी यह खयाल न था कि उसके बहनोई की उक्ति कि आग खाने वालों के पीछे-पीछे फिरोगे तो उनके हगे अंगारे भी समेटने पड़ेंगे, इस प्रकार सच सिद्ध होगी। महाशयजी ने चन्दे के जो लाखों रुपये हड़प किये थे, उसकी चर्चा दफ़्तर में नित्य चसके ले-लेकर होती रहती थी परन्तु कभी किसी ने उनका बाल भी बाँका न किया था। इसके विपरीत संघ की उसकी शाखा में एक भी स्वयं-सेवक ऐसा न था जिसने यह हामी भरी हो कि वह ईमानदार भी हो सकता है और जो वह कह रहा है शायद इसमें सचाई का कुछ अंश हो। उसे क्या पता था कि इन धर्म की दुहाई देने वालों में साँच को आँच ही की प्रथा प्रचलित होगी।

चाननमल इस दुविधा में था कि कटे नाक को कैसे ठीक करे और अब किधर जाय और किस घाट का पानी पिये कि उस मुहल्ले के आस-पास, जहाँ रामकुमार के साथ वह रहने लगा था, उपद्रव बहुत फैल गये और मन की इस अशान्ति के साथ ही वह सुरक्षा-कार्य में संलग्न हो गया। सूतर मण्डी के लम्बे बाजार में आमने-सामने हिन्दुओं और मुसलमानों की गलियाँ थीं; हिन्दुओं की ग्वालमण्डी से लगी हुई और मुसलमानों की डिब्बी बाजार की ओर। जो थोड़े-से मिली-जुली आबादी के मुहल्ले थे उन्हें खाली करके हिन्दू हिन्दुओं और मुसलमान मुसलमानों की गलियों में आकर जमा हो गए थे। रामकुमार ऐसे ही एक मुहल्ले से इस गली में आया था और लाला सालगराम ने उसे रहने के लिए अपने मकान का निचला हिस्सा दंगे शांत होने तक के लिए खाली कर दिया था।

पहले-पहल सूतर मण्डी के बाजार में पूर्ण शान्ति रही और दुकानें भी संध्या होने तक खुली रहतीं। केवल रात को हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने मुहल्लों के बन्द फाटक के पास या कोठों पर चढ़कर पहरा देते रहते। कभी-कभार रात को बाजार में इक्के-दुक्के व्यक्ति पर हमला हो जाता। किन्तु ज्यों-ज्यों पन्द्रह अगस्त का दिन करीब आता जा रहा था कोठे पर खड़े हुए हिन्दू-सिख और मुसलमान एक-दूसरे के विरुद्ध नारे लगाने लगे थे और गलियों के आगे दिन को भी टोलियाँ बनाये पहरा दिया जाता; कभी-कभी ये टोलियाँ बाजार में निकलकर दो-दो हाथ भी कर लेतीं।

सालगराम, जिसके मकान में चाननमल रहता था, पुराना कांग्रेसी था। उसकी पत्नी १९३० में विदेशी माल पर पिकेटिंग करने के अभियोग में आठ मास का कारावास काट चुकी थी। उसकी विदेशी कपड़े की माल रोड पर कमशियल बिल्डिंग में दुकान थी। यह कारोबार सालगराम ने सत्याग्रह आन्दोलन के दिनों में बन्द रखा था।

सालगराम, जो गांधी टोपी पहनता था वह नोकदार नहीं अण्डाकार होती थी। उसकी चाँद के काले बालों के इधर-उधर इस्पात रँगे बालों का हाशिया था जो कनपटियों पर बर्फ-जैसा सफेद हो गया था। इससे उसके पके हुए रग का चेहरा और भी काला लगने लगा था और उस पर भभूत पोती हुई-सी लगती थी। केवल उसकी नाक ही लाल थी, जो सिकुड़े हुए चेहरे पर एक गाजर की तरह दिखाई देती थी।

युद्ध-काल में कपड़े का राशन हो गया था और कांग्रेसी होने के कारण उसे डिपो नहीं मिला था। इसलिए उसका कारोबार चौपट हो चुका था। अब वह किसी-न-किसी तरह अपनी खानदानी इज्जत बनाये हुए था।

सालगराम को सदा से ही गरीबों से नफ़रत रही थी, क्योंकि उसका खयाल था कि गरीब लोग न ताकतवर हो सकते हैं और न इज्जतदार। आर्थिक कठिनाई के कारण उसका अपना रंग-ढंग इस

प्रकार हो गया था मानो उसे अपने-आपसे घृणा हो रही है। उसकी आँखें फटी-फटी-सी जान पड़ती थीं। वह उठाईगीरों की भाँति सँभल-सँभलकर कदम उठाने लगा था और उसकी आवाज़ में एक चिकना-चुपड़ापन आ गया था। बैठा-बैठा वह विचित्र प्रकार से थरथराने लग जाता, मानो उसके नीचे की ज़मीन काँप रही हो।

सालगराम का यह मकान उस मुहल्ले में सबसे ऊँचा था। उसका पिछवाड़ा ग्वालमण्डी के बाजार के मकानों के साथ लगता था। ऊपर-ही-ऊपर से छतें फलाँगकर उधर जाया जा सकता था। पिछवाड़े सीढ़ी लगा ली गई थी। इस रास्ते गली की सारी स्त्रियाँ और कई पुरुष बाहर आया-जाया करते थे। रात को इस मकान की छत पर नित्य पहरा बैठता और यहाँ से ही आस-पास के हिन्दू इलाकों को सिगनल दिये जाते। यह काम अब चाननमल के सुपुर्द था।

सालगराम की एक साली और साढ़ू भी उनके पास आकर रहने लगे। उसकी पत्नी और साली की आकृतियाँ नितान्त भिन्न थीं, केवल उनकी आँखें एक-सी भूरी थीं। श्रीमती सालगराम का चेहरा गुब्बारे की तरह फूला रहता था। नाक बहुत उभरी हुई न होकर उस गोल-मटोल आकृति पर ठीक फबी हुई थी। उसकी बहन के आकार नोकदार किन्तु गम्भीर थे। लंबोतरी आँखें, पतला नाक, तीखी ठोड़ी। चालीस-बयालीस की आयु थी। खूब भरी हुई मशक के से उसके स्तन थे, जिनसे उसने सात लड़कियों का पालन-पोषण किया था। उसे देखकर तो केवल यह महसूस होता है कि संसार में स्त्री का एक-मात्र ध्येय बच्चे जनना ही है। एक का दूध छूटने पर दूसरे को जनना और फिर अगले को। रामकुमार उसकी बड़ी लड़कियों से छेड़-छाड़ करने लगा। स्वयंसेवक संघ वालों का उन दिनों इतना दबदबा था कि किसी की उसे सख्ती से टोकने या वहाँ से चले जाने को कहने की हिम्मत न थी। वे लड़कियाँ ही रात-दिन कमरे में बन्द रहने लगीं। पहले जब रामकुमार शाम को लौटता तो चाननमल की ओर हाथ

बढ़ाकर कहता : "हाथ मिला यार आज छः मुसले मारे हैं।" उसके शब्दों में प्रसन्नता का छलकना और उसके हाथ बढ़ाने का ढंग नित्य वैसा ही होता, केवल मरे मुसलमानों की संख्या बदलती रहती। अब वह कई बार घर में ही पड़ा रहता। यों ही ऊपर-नीचे चक्कर काटता, ताक-झाँक करता और बड़ी लड़कियाँ नज़र न आने पर सीढ़ियों में बैठी छोटी लड़कियों को ही पकड़कर उनके चुम्बन लेने लग जाता। अब 'हाथ मिला छः मुसलमान मारे' के साथ-साथ वह अश्लील बातें भी करने लगा था। चानन मल को यह और भी अखरता।

मुहल्ले में कुछ लोग थे जो इन हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के विरुद्ध थे। किन्तु वे बेबस थे। उनमें अधिकतर नौजवान थे और कुछ बूढ़े भी। एक धार्मिक विचारों के पण्डितजी भी थे जो इस तनातनी और स्वयं-सेवक संघ वालों को नित्य कोसते रहते थे और अपने मुसलमान दोस्तों से सामने वाली गलियों में नित्य मिलने जाया करते थे। रामकुमार तिरस्कार से उन सबको 'साले कम्यूनिस्ट' कहा करता और चाननमल को उनसे बचकर रहने की ताकीद करता।

जैसे-जैसे पन्द्रह अगस्त का दिन समीप आता गया वैसे-वैसे कोठों पर और गलियों के फाटकों के पास नारेबाजी तेज होने लगी। रात को मौका पाकर एक-दूसरों के मुहल्लों पर कमानों के साथ मशालें फेंकी जातीं और सब अपने-अपने कोठों पर खड़े हुए उन्हें बुझाने के लिए तत्पर रहते।

रेड-क्लिफ अवार्ड द्वारा लाहौर पाकिस्तान का हिस्सा घोषित हो जायगा, ये अफवाहें फैलने लगी थीं और इसके साथ-साथ हिन्दू-सिखों और मुसलमानों की खुली झड़पें, और बमों और मशालों का एक-दूसरे के मुहल्लों पर फेंका जाना और भी बढ़ता गया था। अगर मुहब्बत अन्धी होती है तो घृणा की हज़ार आँखें होती हैं। मुसलमानों

को मात देने और अपनी सुरक्षा के लिए नित्य-नई जुगतें सोची जातीं।

ग्वालमण्डी शहर-भर में कपड़े की सबसे बड़ी मण्डी थी। कपड़े का थोक कारोबार सब इसी बाजार में था और यहीं शहर के सबसे मालदार हिन्दू रहते थे। यहाँ के थाने का दारोगा मुसलमान था और उसके अधीन व्यक्ति भी अधिकतर मुसलमान थे। निकटवर्ती इलाके मोती मसजिद के थाने का दारोगा सिख था और वहाँ के सिपाही भी अधिकतर हिन्दू-सिख थे। सात अगस्त को वहाँ तीसरे पहर की नमाज़ पढ़ते हुए मुसलमानों पर बम फेंके गए और उसी रात को ग्वाल-मण्डी के आधे बाजार को आग लगा दी गई।

वैसे तो किसी ने सप्ताह भर से रात को पलक-भर भी नींद नहीं ली थी, पर उस रात सालगराम की अटारी पर चाननमल का ही पहरा था। रात को दो बजे थे कि शाह आलमी दरवाजे की ओर से, जहाँ ग्वाल मण्डी का थाना था, ट्रकों और बसों के आने की आवाज़ सुनाई दी। वे सब चौकन्ने हो गए। चाननमल ने लालटेन की बत्ती ऊँची की और लाल झण्डी लपेटकर उसे पूरब की ओर की मुंडेर पर रख दिया। संकट का यह चिह्न देखकर पूर्व-निश्चय के अनुसार हिन्दू इलाकों में दूर-दूर लालटेनों पर भगवी झण्डियाँ लिपट गईं और सिखों के घरों पर बसन्ती, यह सूचना देने के लिए कि वे होशियार हैं। इसी तरह मुसलमानों ने लालटेनों को पश्चिमी मुंडेरों पर रखकर संकेत देने शुरू किये। इतने में ट्रकों के वापस जाने की आवाजों के साथ-साथ पैट्रोल की बू से नाक फटने लगा और छिन-भर में ग्वालमण्डी बाजार में शाह आलमी दरवाजे की ओर आग की लपटें भभक उठीं। देखते-ही-देखते आग इतने जोर से धधकने लगी कि उसके शोर और धमाकों में वहाँ के लोगों की चीखो-पुकार सुनाई देनी बन्द हो गई। सालगराम के मकान की दीवारें तक तपने लगी थीं और उधर आँख उठाकर नहीं देखा जा रहा था।

अगली सुबह चाननमल ने देखा कि पीपल वाले चौक से लेकर

शाह आलमी दरवाजे तक ग्वाल मण्डी का बाजार जलकर काला हो चुका था और जगह-जगह से अभी धुआँ उठ रहा था। पीपल वाले चौक के कुए में सेवा समिति वालों ने पम्पों को लगाकर आग को बुझाने और फैलने से रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किये थे, किन्तु अभी तक यह ज्वाला पूरी तरह काबू में नहीं आई थी।

अगले दिन सालगराम का एक नाती आकर उसे शहर के बाहरी भाग राम गली में ले गया। रामकुमार ने आना बन्द कर दिया था। लाहौर का पाकिस्तान में शामिल होना अब निश्चित हो चुका लगता था। हिन्दू-सिख इस मुहल्ले को खाली करके शहर के बाहरी भाग में मित्रों के पास, शरणार्थी शिविरों में या पूर्वी पंजाब की ओर जाने लगे थे। डी० ए० वी० कालिज का शरणार्थी कैम्प, जहाँ उस मुहल्ले के अधिकतर लोग जा रहे थे, स्वयंसेवक संघ के संचालन में था इसलिए चाननमल की वहाँ जाने की इच्छा न हुई। शहर में बहनोई के अतिरिक्त वह किसी को नहीं जानता था। उसके दिल में बहनोई के लिए अब आदर भाव उत्पन्न हो गया था, किन्तु उसके पास जाने का उसका उस समय हौसला न हुआ। उस पर निष्क्रियता छा रही थी और उसका मन दुविधा में पड़ा किसी निश्चय पर टिक न पाता।

दस अगस्त को सुबह वहाँ सूतर मण्डी बाजार पर मरघट-जैसी भयानकता छाई हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था कि अनगिनत साँपों की जबानें लपलपाने की आवाज वातावरण में बसी हुई है। जो कोई हिन्दू या सिख बाजार में रह गया था, मकान को ताला लगाकर चला गया था। कुछ ने उस गली में आकर शरण ले ली थी। हिन्दुओं में इस तरह पड़ी हुई भगदड़ को देखकर बहुत-से मुसलमान लाठियाँ और नेजे लेकर अपनी गलियों और मुहल्लों में से बाजार में आकर जमा होने लगे और एक के बाद दूसरी दुकान का ताला तोड़ने लगे। इस प्रकार

देखते-ही-देखते बाजार भर में लूट-सी मच गई।

उस गली के बन्द फाटक की रक्षा एक दर्जन के लगभग नवयुवक कर रहे थे। उस दिन वे ख़ामोश थे, नारों का उत्तर नारों से नहीं दे रहे थे। कृपाणें और नेजे पकड़े उनके हाथों में उतना जोर नहीं था जितना पहले हुआ करता था। फाटक के साथ सटे हुए मकान की ऊपरी मंज़िल पर चाननमल और उसके कुछ साथी पत्थर, तेजाब आदि लिये खड़े थे ताकि यदि कोई फाटक तोड़ने की कोशिश करे तो उन पर ऊपर से भी वार किया जा सके। तनिक खिड़की खोलकर चाननमल ने देखा कि कीमती सामान सड़क पर कूड़े-करकट की तरह बिखेरा जा रहा है। सामने की कपड़े की दुकान में से थान-के-थान निकाले जा रहे हैं, जो किसी को पसन्द नहीं आता वह बाजार में बड़ी बेपरवाही से फेंका जा रहा है, और उन्हें इस तरह पाँव में रौंदा और पटका जा रहा है, मानो उनका कोई मूल्य ही नहीं। उसके साथ की दर्जी की दुकान के आस-पास कतरनें और अधसिले कपड़ों के टुकड़े बिखरे हुए थे। एक बड़ा-सा कोट बाकी रहा था जो खींचातानी में कुछ फट गया था। एक गरीब-सा मौलवी पुराना लबादा उतार टाँगों में दबा, पुरानी मैली कमीज में लिपटी बाँहों को कोट की आस्तीन में डाल रहा था। नीचे की तरफ़ बिसाती की दुकान थी। उसके बाहर भाँति-भाँति के गत्तों के डिब्बे और छोटा-बड़ा सामान बिखरा हुआ था। एक आदमी की ऊँची-ऊँची आवाज सुनाई दे रही थी "अगर ग्यारह नम्बर की जुर्राबें मिलें तो बताना।"

शीशे टूटने की चटक-चटक, चीज़ों के गिरने या टूटने के धड़ाके और धमाके कभी तेज हो जाते और कभी मन्द। कभी एकदम हो-हल्ला होने लगता और किसी दुकान का दरवाजा तोड़ने की आवाजें आने लगतीं, सामने की गलियों से लोग उस तरफ लपकते, फिर कोई सामान से भरी बच्चागाड़ी ठेलते, कोई सिर या पीठ पर गठरी रखे, कोई भरी हुई झोली को दोनों हाथों में सँभाले उधर से गुजरता और कुछ समय के लिए शोरो-गुल कम हो जाता। इन घटनाओं पर बेबस-सा क्रोध

अनुभव होना उसे शीघ्र ही बन्द हो गया और वह इस अद्भुत तुरत-फुरत और रवा-रवी को बड़े अचम्भे से देखने लगा। ये सब लोग पाँचों वक्त के नमाज़ी थे, खुदा के खौफ़ में इनकी जिन्दगी गुजरती थी, हर बात में ईमानदारी और मजहब की दुहाई देते थे। उसे यह देखकर कुछ सान्त्वना मिली कि दुनियावी चीज़ों और सुख आराम की भावना इन लोगों में बराबर बनी हुई है और उनकी राह का रोड़ा खुदा का खौफ़ नहीं पुलिस का डर है। वास्तव में वे सुख-सम्पदा की परलोक में नहीं इसी दुनियाँ में चाहना करते हैं और उनके पूजा-पाठ, नमाज रोजे सब आत्म-वंचना-मात्र हैं। क्या कभी ऐसा समय भी आयगा जब वे इन सुखद वस्तुओं को लूट-पाट और खून-खराबे से न प्राप्त करके आपस में मिल-जुलकर उसका निर्माण करेंगे। उसका बहनोई जब इस प्रकार की बातों से उसे समझाने की कोशिश किया करता था तो वे उसे बहकी-बहकी जान पड़ती थीं। उस दिन वे उस पर इतनी तीव्रता से प्रकट हुईं कि वह उनमें उलझ-उलझ गया।

तीसरे पहर सूतर मण्डी बाजार में एकदम सन्नाटा छा गया और वहाँ फ़ौज की गश्त की आवाज सुनाई दी। उन्होंने फाटक की खिड़की खोल दी और उस पलटन के गोरखा सिपाहियों का अभिवादन किया। कई हिन्दू और सिख वहाँ से निकलना चाहते थे। उनमें से एक ने कुछ फ़ौजियों के साथ लाहौरी गेट पर जाकर एक बस का इन्तज़ाम किया। ऊपर और भीतर सामान भर और ठसाठस बैठे वे रेलवे स्टेशन को रवाना हुए।

सूतर मण्डी और ग्वाल मण्डी की-सी दशा तो कहीं रास्ते में दिखाई न दी किन्तु सब जगह एक अति प्रबल, अति व्यापक सूनापन दिखाई दे रहा था मानो लाखों खोटे सिक्के एक साथ बज रहे हों। ऐसा लग रहा था कि स्वतन्त्रता दिवस नहीं मौत की वेला समीप आ गई है। काम-धन्धे, प्रेम-क्रीड़ा, खेलकूद सब बन्द हो चुके हैं और ऐसा प्रतीत होता था कि नर-नारी, बालक सबको अब विधाता का यह सन्देश मिलने वाला है कि सृष्टि को उनकी जरूरत नहीं है। रास्ते में एक मरा बच्चा

नाले के किनारे पर पड़ा था। एक जगह एक बूढ़ा खम्भे में बाहें डाले गिरा हुआ था। लगता था कि जब उसे छुरा घोंपा गया तो वह खम्भे से लिपट गया और इसी दशा में नीचे लुढ़क गया। एक चौक में सिपाही के खड़े होने के थड़े से लगकर एक लड़की की लाश पड़ी थी और उसके मोटे-मोटे फैले हुए डेले हर राह चलते बटोही को ताक रहे थे।

आकाश पर बादलों की सलेटी धारियाँ फैल रही थीं जैसे किसी बहुत भीमकाय दरिन्दे की चितकबरी देह हो। हल्की-हल्की फुहारें पड़ने लगी थीं। खामोश खाली रेलवे रोड पर लोगों के गिरोह चले जा रहे थे। वे थके हुए थे, आँखें ऐसी भयभीत और चेहरों पर ऐसी हवाइयाँ मानो वे मनुष्य न होकर भूत-प्रेतों के साये हैं। सड़कों पर किसी प्रेत-शाला-सी वीरानगी और दहशत थी। चाननमल के रोम-रोम में ऐसा हौल बैठ गया कि जब उसके बहनोई ने उसे देखा तो वह अचम्भे में खड़ा-का-खड़ा रह गया।

५

जिस एक कमरे में चाननमल का बहनोई रहता था उसमें प्रत्येक वस्तु वैसी-की-वैसी थी, फिर भी उसे लगा कि किसी अंधड़ या भूचाल ने उस दुनियाँ को भी बदल दिया है; किन्तु कुछ और ही तरह से। उसकी बहन का सब परिवार कुछ-का-कुछ हो गया लगता था, उसके बच्चे तक बदल गए थे और इन तीनों में परिवर्तन एक-सा नहीं हुआ था। बड़ी लड़की चानों ने अपने-आपको प्रशान्त आकृति में छिपा लिया था। उसके चेहरे पर बहुत संजीदगी और समझदारी आ गई थी। बातें वह आगे से अधिक करने लगी थी किन्तु उनका आशय कम होता।

उनमें माँ-बाप का सहारा बनने, उनको अपनी दृढ़ता का विश्वास दिलाने की भावना अधिक होती। साथ के मुसलमान-परिवार के बच्चों को वह और भी जी-जान से खिलाने-दुलारने लगी थी। बात-बात में और बोल-बोल के बाद वह 'जी' के शब्द को अवश्य जोड़ती। उसके प्रशान्त बाहरी आकार के पीछे यह लगता कि एक बहुत भारी अदृश्य भार उसने उठा रखा है और उस बोझ को सँभाले रखने के लिए वह यथा-सम्भव प्रयत्न कर रही है।

उससे छोटी गुरबचनी हर समय हँसती रहती थी। पिता को चाचा और माँ को चाई पुकारती हुई वह कभी न थकती थी। मामूँ को देखते ही उसकी पीठ या कन्धे पर झट सवार हो जाती। वह अब हर समय रीं-रीं करती रहती और बेहद चिड़चिड़ी हो गई थी। उससे छोटा बूटा, जो हर समय घर से बाहर भागने के लिए उत्सुक रहता था अब माँ की ओढ़नी में छिपा रहना चाहता। यदि उसे ओढ़नी में से निकालकर कोई गोद में ले लेता तो वह मुँह को उसकी छाती में छिपा लेता।

चाननमल का बहनोई ऊँचे लहजे में बातें करने और बहुत भारी कदमों से चलने लगा था। उसके चेहरे के पुट्ठे तने रहते थे। उसके पपोटे किनारों से फड़फड़ाते हुए लगते, मानो कोई नन्ही-सी तितली तड़प रही है और हर समय वह अपने होंठ काटता और दाँत किच-किचाता रहता।

चाननमल की बहन लालकौर की आँखें सदा गीली-गीली-सी रहने लगी थीं मानो डबडबाने को हैं। उसकी आकृति तो वैसी ही थी किन्तु चाल-ढाल इतना भिन्न मानो उसकी दुनियाँ ही बदल गई हो।

जब रात को सब एक साथ बैठे तो बहुत देर वहाँ मौन छाया रहा। तीनों बच्चे पास सोए हुए थे। चाननमल की बहन लालकौर

उनके श्वासों में खोई हुई थी। वह इन श्वासों से ही इन्हें पहचान सकती थी। चानों का साँस भारी था। गहरे-गहरे श्वास और हर सात-आठ श्वासों के बाद भिंचे हुए होंठों में से 'फ्रँह' का स्वर, जो कि अब पहले-सा मन्द नहीं रहा था। गुरबचनी का एक साँस भारी होता, एक हल्का और यह क्रम सारी रात यन्त्रजनित सामान्यता से जारी रहता। किन्तु अब इनका नियम बीच-बीच में टूट रहा था। सबसे छोटा बूटा सन्ध्या होने पर दूध पीते ही सो जाया करता था और उसके कण्ठ से बिलौटे-जैसी ग़रग़र की आवाज़ निकलती रहती थी, किन्तु अब आँख लगते ही उसके नथुने बन्द हो जाते और उसके श्वास हल्के-हल्के हाँफने का रूप ले लेते। उसके पति के श्वास भी अब पहले की तरह नहीं रहे थे। सोते समय उसका साँस बलिष्ठ होता था, जो नाक की हड्डी के पास आधे क्षण के लिए रुककर नथुने फुलाते हुए एकदम बाहर निकल जाता। यदि उसका पति कारखाने से थका-माँदा आता तो नींद में उसके तीन साँस हल्के पर लघु और एक भारी और दीर्घ होता। किन्तु अब वह रात-भर लगातार करवटें बदलता रहता, उसका एक नथुना बन्द होता और दूसरा खुलता रहता, और उसके साँसों ने अब बेढब सिसकारियों और सीटियों का रूप धारण कर लिया था।

एकाएक बागबानपुरा की बस्ती का छोटा-सा उनका दो मंजिला मकान, जिसे दंगों के कारण छोड़कर उन्हें यहाँ आना पड़ा था, लालकौर के मन में आ बसा और उसका अंग-अंग उसका नैकट्य अनुभव करने लगा। विवाहित जीवन के सोलह वर्षों में वह उसकी पूरी तेईस सीढ़ियाँ अनगिनत बार चढ़ी-उतरी थी। उनको अपने इन हाथों से उसने हज़ारों बार लीपा-पोता था। लालकौर के पाँव उसी प्रकार उखड़े हुए पलस्तर और उतरी हुई खिपचियों को महसूस करने लगे। प्रत्येक सीढ़ी पर पाँव रखने का जो भिन्न-भिन्न स्पर्श था वह उसके मतिष्क में उग्रता से सजीव हो उठा।

चौदहवें वर्ष में ही चानों खूब भर आई थी और एकदम ही उसके

बराबर हो गई थी। गोद के बच्चे की जब कभी जल्दी आँख लग जाती तो वह सोने से पहले कुछ देर के लिए चानों के साथ लेट जाती। उसके होने वाले दूल्हे की कल्पना करती हुई वह उसके शरीर को सूँघती रहती, जिस पर अब वस्त्र पूरी तरह और सचेत भाव से लिपटे रहते। उसकी देह, जो पहले दूध में भिगोये कच्चे चनों की बास दिया करती थी अब उसमें नये खिले फूलों की महक रच गई थी। उसे बाँहों में लिये-लिये वह उसके निखरते हुए बदन को रह-रहकर सूंघती और कल्पना के इस लोक में नन्हे-नन्हे दोहते उसकी पीठ पर क्रीड़ा करने लग जाते। दुनियाँ-भर से बेसुध होकर असीम उल्लास की इस सृष्टि में वह इस प्रकार खो जाती मानो इस कल्पना-जगत् के बाहर वर्तमान की दुनियाँ का कोई अस्तित्व ही न हो। इन बातों को याद करके उसकी आँखें छलछला उठीं और एक आह उसकी हड्डी-हड्डी को चटकाती उसके कण्ठ से फूट निकली। इससे उस मौन गलाटीप वातावरण के कसे खिचे हुए तार स्पन्दित हो उठे। चाननमल का कण्ठ और भी सूखने लगा। उसने टेंटुवे को ऊपर-नीचे हलाकर कुछ कहने का असफल प्रयास किया और उसकी आँखों से जलते हुए मोटे-मोटे आँसू टपकने लगे।

पाकिस्तान बनने के दो दिन बाद जब रेडक्लिफ़ अवार्ड की घोषणा हुई और लाहौर से भी अल्पसंख्यकों का सामूहिक स्थानान्तरण होने लगा तो यहाँ के हिन्दू-सिख मज़दूर भी देश छोड़ने पर बाध्य हुए। हज़ारों मुसलमान मज़दूर उनका सामान उठाये, उन्हें चारों ओर से घेरे, जरनैली सड़क पर अमृतसर की ओर बढ़ने लगे। वाघा की सीमा पर जब विदा होने का समय आया तो वे गले मिल-मिलकर रोये। ऐसे लगता था मानो सगे भाई बिछुड़ रहे हों। यह दृश्य देखकर वहाँ खड़े फ़ौजियों तक की आँखें भीग गई थीं।

६

जब वे अमृतसर पहुँचे तो शहर में बम-गोले आदि फटने की आवाजों से कान फटे पड़ते थे और बाहरी इलाकों से, जहाँ मुसलमानों की बस्तियाँ थीं, आग और धुएँ की लपटें आसमान तक उठ रही थीं। हर तरफ हो-हल्ला मच रहा था, चारों तरफ रोंगटे खड़े करने वाली अमानुषिक चीख-पुकार उठ रही थी और घनी धुन्ध-सी सारे शहर पर फैलती जा रही थी। उन्हें ऐसे लगा मानो पीड़ा और चीख-चिल्लाहट के इस वातावरण में निर्दयता, भय, घृणा और बर्बरता की बिजलियाँ कड़क रही हैं। सर्वव्यापी त्रास, भयानकता और बीभत्सता के इस घोर प्रकोप में लाशों के ढेर इस तरह लग रहे थे जैसे तेज आँधी सूखे पत्तों को एक तरफ बुहार देती है।

शहर के बाहर जगह-जगह टेंटों का नगर बस रहा था। कम्पनी बाग में जहाँ वे गये, सब तम्बू-कनातें शरणार्थियों से ठसाठस भरी हुई थीं। महाराजा रणजीतसिंह की बारादरी बाग के एक किनारे पर थी, उसमें भी शरणार्थी आबाद होने लगे थे। सन्तोख सिंह, चाननमल और उनके कुछ साथियों ने उसकी एक महराब के नीचे सामान रख दिया। सन्तोख सिंह को कालका के रेलवे कारखाने में जाना था, किन्तु गाड़ियों का आना-जाना अव्यवस्थित-सा हो रहा था।

शहर में शरणार्थियों के ठठ के ठठ और रेले के रेले चले आ रहे थे। हर नया रेला पहले से अधिक त्रस्त और अधिक लुटा-पिटा होता। शहर के सब मन्दिर, गुरुद्वारे, धर्मशालाएँ, मसजिदें, मुसलमानों के छोड़े सब मकान जो जलने से बच रहे थे, सड़कों और बाजारों में बने खोले, बागों मैदानों में लगे कैम्प, स्कूल और कालिज सब खचाखच भरते जा रहे थे। बहुत-से कैम्पों में परिवार-के-परिवार आ बसे थे। टैण्टों और झोंपड़ियों के बाहर, मकानों के नीचे गलियों और बाजारों में, जमघट लगाये वे अपनी-अपनी आपबीती बार-बार सुनाते जाते,

कभी उसे कभी उसे, नहीं तो घर में आपस में एक-दूसरे को। कई अतीत के प्रसंग से वर्तमान को भूल जाना चाहते और हाल की दुखद घटनाओं के क्लेशपूर्ण वृत्तान्त से भविष्य के भय को दूर करना चाहते। मिल बैठते ही उनकी याददाश्त का दफ्तर खुल जाता। आँख खुलते ही यह अतीत कथा और वर्तमान चर्चा आरम्भ हो जाती। दिन के साये छोटे होने और फिर फैलने लग जाते, संध्या होती और फिर रात भीग जाती, नक्षत्र रात को आसमान के एक छोर से दूसरे छोर पर चले जाते, किन्तु उनकी यह राम कहानी समाप्त न होती। घरों में या बाहर बैठे, सड़कों पर चलते, काम-धन्धे की खोज में भटकते, उनका मन इन्हीं विचारों की मक्खियों का छत्ता बना रहता। कभी उनमें से कोई ठण्डी आहें भरने लग जाता, किसी की आँखें डबडबाने या छलछलाने लग जातीं, कोई सिसकने या बिलख-बिलख कर रोने लग जाता, किसी की फूट-फूटकर रोते-रोते, हिचकियाँ लेते-लेते घिग्घी बँध जाती, विलाप करते-करते किसी को मूर्च्छा आ जाती। कईयों की तो आँखें ही सूख गईं थीं और वे अपने कम्पित अधरों को काटते रह जाते। कोई दीर्घ उच्छ्वास छोड़कर कह देता : "हे ईश्वर क्या हमने इतने पाप किये थे।" कोई आप-से-आप बड़बड़ाने लग जाता : "हे राम तेरी करनी।" कोई चिन्तामग्न बैठा-बैठा हड़बड़ा उठता : "देखें अब कैसे कटती है।" कोई बात-बात पर रटता जाता : "इन आँखों ने क्या नहीं देखा।" और अपने पर हुए अत्याचारों को भुलाने के लिए; कई उत्तरी पंजाब में हो रही घटनाओं को बार-बार सुनते-सुनाते। किसी की बीते हुए अच्छे दिनों की याद में आँखें चमक उठतीं।

उनकी हर बात और प्रत्येक वाक्य 'था' और 'थी' पर खत्म होता था, मानो भविष्य का कोई अस्तित्व ही नहीं। भारत को प्राप्त हुई आजादी की कल्पना नगाड़े पर लगी चोटों की तरह जब कभी उनके मस्तिष्क को डगडगा देती तब भी उन्हें भविष्य नहीं अतीत का ही खयाल आता और यह धारणा उनके अन्तःकरण को ही दीमक की भाँति चाटने

लग जाती, कि आए जमाने राजे-महाराजे तो बदलते रहे हैं, किन्तु यह आजादी क्या मिली प्रजा ही की अदल-बदली कर दी गई, गाँव-के-गाँव गाजर-मूली की तरह उखाड़-पछाड़कर इधर-उधर फेंक दिये गए।

एक और धारणा थी जो उनके रोम-रोम में बसी हुई थी। वह पाकिस्तान से बच कर निकल आने पर परमात्मा का धन्यवाद था। प्रत्येक शरणार्थी विधाता का धन्य-धन्य कर रहा था जिसने इन विपत्तियों में उनकी जान बचाई और रक्षा की। उनके जीवन का एक एक छन और उनका एक-एक श्वास इसी धन्यवाद और कृतज्ञता की भावना से भरपूर था। जो कुछ होता है ईश्वर की इच्छा से होता है और जो कुछ ईश्वर करता है प्राणी के भले के लिए करता है, इन कथनों में अथाह श्रद्धा और विश्वास होने पर भी उनके खून की बूँद-बूँद में पाकिस्तान और मुसलमानों के प्रति तूफान उठ रहा था। जितना उग्र किसी का परमात्मा के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन था उतनी ही तीक्ष्ण उसकी मुसलमानों के प्रति यह कटुता और घृणा थी। जिस भूमि में मनुष्य जन्मता है, जहाँ के दाने-पानी से वह परवरिश पाता है, उससे जो घनिष्ठ सम्बन्ध और अमिट स्नेह होता है, वह उनको रह-रहकर तड़पाता, रह-रहकर उन्हें अपने जन्म और अपने घर-गाँव की याद तड़पाती; उसकी काट करने के लिए, उस पर काबू पाने के लिए उस समय उनके पास घृणा के अतिरिक्त और कोई साधन ही नहीं था।

बार-बार गाँव का शब्द पूरी मिठास और डहडहाहट के साथ उनके मस्तिष्क में उजागर हो जाता। गाँव की कल्पना उनके सम्मुख हरे-भरे फलते-फूलते जीवन को मूर्तिमान कर देती, भरे-पूरे वृक्ष का-सा जीवन जिसकी जड़ें दूर धरती में गई हुई थीं, जिसमें यदि पतझड़ होती तो नई-नई कोपलें और डालियाँ भी अंकुरित होतीं। क्या फिर कभी वे जड़ पकड़ सकेंगे ? क्या रुण्ड-मुण्ड ठूँठ-सा उनका यह जीवन फिर भरा-पूरा वृक्ष बन सकेगा। यही चिन्ता और दुविधा चाननमल को उन सबके चेहरों पर लिखी दीख रही थी। उनके गाँव में गरीब भी थे किन्तु

उनमें इतनी बेबसी और बेचारगी नहीं हुआ करती थी, जितनी कि वह उनमें देख रहा था। गाँव में अति दरिद्रता और दीनता की अवस्था में भी कोई-न-कोई द्वार होता जिसकी शरण ली जा सकती, किन्तु अब उनके लिए तो तिनके का सहारा तक न रहा था। अपने काम-धन्धे और घर-घाट से वंचित होकर वे ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो उन्हें नितान्त विवस्त्र ही नहीं कर दिया गया बल्कि उनकी त्वचा तक को उधेड़कर उनकी हड्डी-हड्डी बोटी-बोटी को नंगा कर दिया गया है।

पाकिस्तान जाने वाली रेल गाड़ियों के अमृतसर पहुँचने के एकाध घण्टा पहले शहर में डौंडी पिट जाती कि 'साध-संगत' गाड़ी रोकी जाने के स्थान पर 'प्रसाद' लेने के लिए पहुँच जाय। तत्पश्चात् शहर पर विशाल चंदोवे की तरह छाई हुई लहू की सड़ाँध और भी घनी हो जाती और कौड़ियों के भाव बिकने वाले लूट के सामान की कीमत और भी गिर जाती। पाकिस्तान से आने वाली गाड़ियाँ खाली होतीं या उनमें वस्त्राभूषण-विहीन स्त्रियाँ या हाथ-पाँव कटे मनुष्य होते। इससे शहर में क्रोध की ज्वाला और भी भड़क उठती, डौंडी और भी जोर से पिटती और पाकिस्तान जाने वाली गाड़ियों की राह देखने वालों की भीड़ और भी बढ़ जाती।

चाननमल के बहनोई के चेहरे के पट्ठे और भी तन और अकड़ गए थे। उसके पपोटों की मर रही तितली-सी फड़क में अब आर्त्तता आ गई थी, जो सीने में नेजे की तरह चुभती। वह होंठ काट-काटकर लहु-लुहान किये रहता। उसका चेहरा भभूके की तरह तपता और आँखों में उभरे हुए लाल डोरे जलते हुए दीखते। अब उसके कदमों का भारीपन और आवाज़ की गमक जाती रही थी और चलते-चलते बातें करते-सुनते वह इस प्रकार थरथरा उठता मानो एकाएक वृद्ध हो गया हो; और उसके लहजे तक में टूटते हुए काँच-सी चटक आ जाती।

शहर में डौंडी पिट रही थी कि उस शाम को पाकिस्तान जाने वाली गाड़ी सवा सात बजे अमृतसर पहुँच रही है और शहर के बाहर ही नहर के पुल के समीप रोक दी जायगी। शहर में हथगोले और दस्ती बम मुफ़्त बँट रहे थे। राइफलें और स्टेनगनें तीस-चालीस रुपये को खुले आम बिक रही थीं। सन्तोखसिंह कहीं से बमों की दो गठरियाँ और एक स्टेनगन ले आया। सूरज छिपने से पहले ही बाल-बच्चों को उस बारादरी में छोड़, जिसमें उन्होंने अस्थायी निवास किया था, चाननमल को साथ लेकर, वह नहर के पुल का पता पूछता हुआ शहर के बाहर की ओर हो लिया। उसने अपनी चादर में स्टेनगन लपेट ली थी और हथगोलों की एक गठरी चाननमल को पकड़ा रखी थी।

सन्तोखसिंह बहुत हट्टा-कट्टा था, उसके बलवान शरीर में पराक्रम कूट-कूटकर भरा हुआ था। किन्तु अमृतसर में आकर वह कुछ इस प्रकार गरदन झुकाकर और बाजू लटकाकर चलता कि अनुभव होता उसकी सारी शक्ति जाती रही है और वह अभी लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा। उसकी चौकस आँखें अब अधखुली रहतीं। उसकी आँखों की स्याही फीकी पड़ गई थी और गुलाबी डोरों से भरी सफेदी में घुल-मिल जाने से मुरदापन का आभास होता। नाक के आस-पास लाल नसों का जाल उभर आया था जिससे उसका चेहरा सपाट-सा लगने लगा था। उसकी गरदन और माथा पसीने से भीगे रहते और पाँव जो रीछ के पंजों की तरह जमीन पर जोर-जोर से पड़ते थे अब निर्बल बुड्ढों की तरह डगमगाने लगे थे।

रेल के पुल की ओर जाते हुए अब फिर जोर-जोर से उसके पाँव सड़क पर पड़ रहे थे। चुपचाप लम्बे-लम्बे भारी-भारी डग भरता हुआ वह चला जा रहा था। उसकी शक्ति लौट आई लगती थी। केवल उसके आनन पर पीड़ा-भरी बेचैनी छा रही थी जैसे वह एकाएक चीख-चीखकर रोने लगेगा।

नहर के पुल के दूसरी ओर खट्टों का बगीचा था, वहाँ एक घने

पेड़ के नीचे छिपकर वे दोनों बैठ गए और पाकिस्तान जाने वाली गाड़ी की चुपचाप बाट जोहते रहे। चाननमल की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। सन्तोखसिंह के श्वास गुरुतर होते जा रहे थे। अकस्मात् दाढ़ी खुजाते हुए वह रुक-रुककर कहने लगा : "कालका जाने की बजाय, मद्रास या बंगाल की रेलवे में नाम दिया होता तो अच्छा रहता; वहाँ की भाषा और होती, और ये जहर में बुझी बातें लोग करते हैं समझ में तो न आतीं।"

सन्ध्या होने तक वहाँ सशस्त्र लोगों के अनेक जत्थे आ जमा हुए थे। उनमें अकाली-सैनिक, स्वयंसेवक तथा बिना वर्दी और बावर्दी फौजी प्रधान थे। सन्तोखसिंह ने पहले चाननमल को कहा कि गाड़ी के रुकने पर उसके मुसलमान यात्रियों में आत्मरक्षार्थ हथगोले बाँट दे फिर बात पलटकर उसे घर लौट जाने का आदेश दिया और खट्टों के पेड़ों में से होता हुआ उसे कुछ दूर तक छोड़ आया।

अभी झुटपुटा पूरी तरह गहरा हुआ ही था कि रेलगाड़ी की सीटियाँ और उसकी सुस्त पड़ती हुई ठक-ठक सुनाई दी। बहुत ही अशुभ और मलिन हवा बहने लगी थी। खट्टों के अनगिनत भारी-भारी पत्ते इस प्रकार सरसराने लगे मानो समस्त मानव जाति एक साथ सिसकने लगी हो। भादों का आकाश एकाएक मेघाच्छन्न हो जाने से अँधेरा गहन, अति गहन हो गया था। एक मन्द तारक तक नहीं दीख रहा था।

गाड़ी रुकी तो सन्तोखसिंह एक डिब्बे के नीचे पहिये के पीछे जा बैठा। सशस्त्र लोगों के जत्थे नारे लगाते हमहमाते हुए गाड़ी के पास आए ही थे कि स्टेनगन की बौछार बिजली की भाँति कौंधने लगी। क्षण-भर के लिए तमाम स्वर शान्त हो गए, समस्त गति जम गई। फिर लोग इस तरह पीछे हटे मानो आँधी के तेज झोंके ने कागजों के ढेर को उड़ाकर उधर बखेर दिया हो।

गाड़ी के यात्रियों का वहाँ नहीं स्टेशन की दूसरी तरफ रीगो पुल

के पास 'सत्कार' हुआ। परन्तु उस रात सन्तोखसिंह बारादरी में न पहुँचा। रात के नौ बजे मोटी-मोटी छितराई हुई बूँदें पड़ने लगीं, घुमड़ रहे काजल से काले बादलों में बिजली की कृपाणें लपकने लगी थीं। चाननमल को यह मेघगर्जन किसी भीमकाय दानव की रुधिर-प्रिय दहाड़ प्रतीत हो रही थी, मानो यह आकाश एक निशाचर दैत्य है जो दहाना फाड़-फाड़कर दहाड़ रहा हो। अकस्मात् तेज मूसलाधार वर्षा के असंख्य कोड़े धरती पर पड़ने लगे। उसकी कर्कश साँय-साँय चाननमल को भैरवी-यातना से पीड़ित धरती की व्यथित हुँफनी जान पड़ रही थी। तेज आँधी के मारे पेड़ एक-दूसरे से लिपट-लिपटकर सिसकने लगे और झाड़ियाँ सिर पीट-पीटकर विलाप करने लगीं। सड़कों और मैदानों में वर्षा का पानी इस तरह टूट पड़ रहा था मानो लाखों नर-नारी अपने खोये हुए प्रियजनों की खोज में भाग-दौड़ रहे हों।

अगली प्रातः पौ फटते ही जब चाननमल नहर के पुल के पास पहुँचा तो खून से पिचपिचा रही पटरी के पास बहनोई की पगड़ी के अतिरिक्त उसे कुछ न मिला। आस-पास रात को उधर आये फौजी ट्रकों के पहियों के गीली जमीन में खुबने के निशान बने हुए थे।

चाननमल खड़ा-का-खड़ा रह गया। उसकी आत्मा असह्य वेदना से तड़प उठी जैसे उसमें शूल चुभो दिया गया हो। हर तरफ उदासी फैली हुई थी, सन्नाटा छाया हुआ था। हवा सनसना रही थी और आकाश निरभ्र हो गया था। आप-से-आप चाननमल का मुँह ऊपर उठ गया, प्रातःकाल के नीले, अति नीले आकाश की ओर, और उसके मन में आया कि उसकी यह स्वच्छता और पवित्रता विधाता की बहुत बड़ी भूल है। शुचिता और लावण्य का यह कितना अपव्यय है। यह प्रशान्ति, यह इतनी निर्मलता, ऊपर इस संसार से इतनी दूर कितनी व्यर्थ है। यह सोचते-सोचते उसकी गरदन लटक गई।

एकाएक यह चाहना चानतमल के चित्त में उदय हुई कि बहनोई की तरह वह कहीं से एक स्टेनगन ले आए और अपने रक्त से विधाता की इस भूल को धोने की कोशिश करे, वह भी किसी तरह उस दिग्-दिगन्त में फैली हुई दुष्टता और अमानुषिकता के विरुद्ध विद्रोह करे। वह सोचता रहा सोचता रहा और धीरे-धीरे उसकी गरदन ऊँची होने लगी। उसके मन में. एक दृढ़ संकल्प का उद्बोधन हो रहा था मानो आधी रात के गहन अन्धकार में से पौ फट पड़ी हो।